अथ पञ्चदशं काण्डम्

अथ त्रिंशः प्रपाठकः ॥

अथ प्रथमोऽनुवाकः

१. [प्रथमं सूक्तम्]

सम्पूर्ण पञ्चदशकाण्ड का ऋषि अथर्वा है—अथ अर्वाङ् =अन्तः-निरीक्षण करनेवाला व अथर्वा न डाँवाडोल होनेवाला। यह व्रात्य है—व्रतमय जीवनवाला है, विद्वान्, ज्ञानी है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः** ॥ छन्दः—**साम्नीपङ्क्तिः, द्विपदासाम्नीबृहती** ॥

इयमान व्रात्य

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्॥ १॥
स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत्तत्प्राजनयत्॥ २॥

१. **व्रात्यः**=व्रतसमूह का पालन करनेवाला यह व्रतीपुरुष **इयमानः एव आसीत्**=गतिशील ही था, यह कभी अकर्मण्य नहीं हुआ। **सः**=वह व्रात्य **प्रजापतिं समैरयत्**=अपने हृदयदेश में प्रजापति प्रभु की भावना को प्रेरित करता था। इसने हृदय में प्रभु का चिन्तन किया। वस्तुतः प्रभु-स्मरणपूर्वक क्रिया होने पर क्रिया में अपवित्रता नहीं आती। २. **सः प्रजापतिः**=उस प्रजापति प्रभु ने **सुवर्णम्**=प्रभु गुणों का सम्यक् वर्णन करनेवाले इस ज्ञानी को **आत्मन् अपश्यत्**=अपनी गोद में बैठा देखा। ब्रह्मनिष्ठ होकर ही तो यह व्रात्य सब कर्मों को कर रहा था, **तत्**=अतः **प्राजनयत्**=प्रभु ने इस व्रात्य के जीवन का विकास किया। इसे उत्तम गुणों से युक्त जीवनवाला बनाया।

भावार्थ—व्रतमय जीवनवाला यह साधक क्रियाशील हुआ। इसने हृदय में प्रभु की भावना को प्रेरित किया। प्रभु ने इस आत्मनिष्ठ व्रात्य के गुणों का विकास किया।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः** ॥ छन्दः—**३ एकपदायजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप्, ४ एकपदाविराड्गायत्री, ५ साम्न्यनुष्टुप्** ॥

'ब्रह्म (ज्ञान) तप व सत्य' द्वारा व्रात्य का 'महादेव व ईशान' बनना

तदेकमभवत्तल्ललामंमभवत्तन्महदभवत्तज्ज्येष्ठमंभवत्तद्
ब्रह्माभवत्तत्तपोऽभवत्तत्सत्यमभवत्तेन प्राजायत॥ ३॥
सो ऽवर्धत स महानभवत्स महादेवो ऽभवत्॥ ४॥
स देवानामीशां पर्येत्स ईशानोऽभवत्॥ ५॥

१. **तत्**=प्रभु ने जब इस व्रात्य की शक्तियों का विकास किया तब वह **एकं अभवत्**=अद्वितीय हुआ—वह अनुपमरूप से विकसित शक्तियोंवाला बना। **तत् ललामं अभवत्**=वह बड़े सुन्दर (charming) जीवनवाला हुआ। **तत् महत् अभवत्**=वह महान् हुआ। विकसित शक्तियोंवाले सुन्दर जीवनवाला होने से वह पूज्य हुआ। **तत् ज्येष्ठम् अभवत्**=वह प्रशस्यतम बना—सबसे बड़ा हुआ—'ज्ञान-बल व ऐश्वर्य' से बढ़ा। **तत् ब्रह्म अभवत्**=वह ज्ञान का पुञ्ज बना। **तत् तपः अभवत्**=वह तपोमूर्त्ति हुआ। **तत् सत्यं अभवत्**=वह सत्य का पालन करनेवाला हुआ।

तेन=उस 'ब्रह्म, तप व सत्य' से वह **प्राजायत**=प्रकृष्ट विकासवाला हुआ। मस्तिष्क में ज्ञान से, शरीर में तप से तथा मन में सत्य से शोभायमान हुआ। २. इसप्रकार **सः**=वह **अवर्धत**=बढ़ा, **सः**=वह **महान्**=पूज्य **अभवत्**=हुआ। **सः महादेवः अभवत्**=उस महान् देव प्रभु के पूजन से वह पुजारी भी प्रभु के रंग में रंगा गया और वह महादेव ही हो गया। '**ब्रह्म इव**' परमेश्वर-सा बन गया। ३. **सः**=वह **देवानाम्**=सब देवों की **ईशा पर्यैत्**=ऐश्वर्यशक्ति को व्याप्त करनेवाला हुआ। सब दिव्यगुणों को धारण करने के लिए यत्नशील हुआ। इसी से **सः**=वह **ईशानः**=ईशान **अभवत्**=हो गया। उस व्रात्य का नाम ईशान ही पड़ गया।

भावार्थ—व्रात्य ने प्रभु-सम्पर्क द्वारा अपने जीवन को अनुपम, सुन्दर, महान् व ज्येष्ठ बनाया। 'ज्ञान, तप व सत्य' को धारण करके वह विकसित शक्तिवाला हुआ। महादेव की उपासना करता हुआ 'महान् व ईशान' बना।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—६ **त्रिपदाप्राजापत्याबृहती,** ७ **आसुरीपङ्क्तिः,** ८ **त्रिपदाऽनुष्टुप्**॥

इन्द्रधनुष् द्वारा 'अन्तः व बाह्य' शत्रुओं का विजय

स एकव्रात्यो ऽभवत्स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः॥ ६॥
नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम्॥ ७॥
नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन
द्विषन्तं विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति॥ ८॥

१. सब देवों का ईश बनकर **सः**=वह **एकव्रात्यः अभवत्**=अद्वितीय व्रतमय जीवनवाला हुआ। **सः धनुः आदत्त**=उसने धनुष् ग्रहण किया। धनुष् कोई और नहीं था। **तत् एव इन्द्रधनुः**=वही इन्द्रधनुष् था। 'प्रणवो धनुः' ओंकाररूप धनुष् को उसने ग्रहण किया। २. **अस्य**=इस धनुष् का **उदरं नीलम्**=उदर नीला है और **पृष्ठं लोहितम्**=पृष्ठ लोहित है। 'ओम्' इस धनुष का 'अ' एक सिरा है, 'म्' दूसरा। 'अ' विष्णु है, 'म्' शिव व रुद्र है। इसका मध्य 'उ' ब्रह्मा है। ३. यह उदर में होनेवाला—मध्य में होनेवाला 'उ' नील है, '**(नि+इला)**'=निश्चित ज्ञान की वाणी है। इसका अधिष्ठाता ब्रह्मा है। **नीलेन एव**=इसके द्वारा ही **अप्रियं भ्रातृव्यम्**=अप्रीतिकर शत्रु=कामवासना को **प्रोर्णोति**=आच्छादित कर देता है। ज्ञान प्रबल हुआ तो वह काम को नष्ट कर देता है। 'ओम्' इस धनुष् का पृष्ठ सिरा 'अ और म्' क्रमशः विष्णु व रुद्र के वाचक होते हुए शक्ति की सूचना देते हैं। 'लोहित' रुधिर का वाचक है तथा लाल रंग का प्रतिपादन करता है। ये दोनों ही शक्ति के साथ सम्बद्ध हैं। इस **लोहितेन**=शक्ति से **द्विषन्तं विध्यति**=द्वेष करनेवाले को विद्ध करता है—शत्रुओं को जीतता है। 'उ' से अन्तःशत्रुओं की विजय होती है तो 'म्' से बाह्यशत्रुओं की। **इति ब्रह्मवादिनो वदन्ति**=ऐसा ब्रह्मज्ञानी पुरुष कहते हैं।

भावार्थ—व्रतमय जीवनवाला पुरुष 'ओम्' नामक इन्द्रधनुष् को अपनाता है। इस धनुष् का मध्य 'उ' 'ज्ञान की वाणी' (वेद) का वाचक है। इसके द्वारा यह अन्तःशत्रु काम का विजय करता है और इस धनुष के सिरे 'अ' और 'म्' विष्णु व रुद्र के वाचक होते हुए शक्ति के प्रतीक हैं। इनके द्वारा यह बाह्य शत्रुओं को जीतता है।

२. [द्वितीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—१ **साम्न्यनुष्टुप्**, २ **साम्नीत्रिष्टुप्**, ३ **द्विपदाऽऽर्षीपङ्क्तिः**, ४ **द्विपदाब्राह्मीगायत्री**॥

प्राची दिशा में 'बृहत्-रथन्तर, आदित्य व विश्वेदेवों' की प्राप्ति

स उदतिष्ठत्स प्राचीं दिशमनु व्य ∫ चलत्॥ १॥
तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्य ∫ चलन्॥ २॥
बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च
देवेभ्य आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति॥ ३॥
बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च
देवानां प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि॥ ४॥

१. **सः**=वह व्रात्य **उदतिष्ठत्**=उठा, आलस्य को छोड़कर उद्यत हो गया और **सः**=वह **प्राचीं दिशम्**=(प्र अञ्च) आगे बढ़ने की दिशा को **अनुव्यचलत्**=लक्ष्य करके चला। व्रतमय जीवनवाला पुरुष क्यों न आगे बढ़ेगा? २. **तम्**=उस व्रतमय जीवनवाले, अग्रगति के लिए निरन्तर उद्यत व्रात्य को **बृहत् च**=हृदय की विशालता, **रथन्तरं च**=शरीररूप रथ से जीवनमार्ग को पार करने की वृत्ति **आदित्याः च**=सूर्यसम ज्ञानदीप्तियाँ तथा **विश्वेदेवाः**=सब दिव्यगुण **अनुव्यचलन्**=अनुकूलता से प्राप्त हुए। ३. **सः**=वह व्रात्य **वै**=निश्चय से **बृहते च**=हृदय की विशालता के लिए **रथन्तराय**=शरीररूप रथ के द्वारा जीवनमार्ग को पार करने की वृत्ति के लिए **आदित्येभ्यः च**=ज्ञानदीप्तियों को प्राप्त करने के लिए **च**=और **विश्वेभ्यः देवेभ्यः**=सब दिव्यगुणों के ग्रहण के लिए **आवृश्चते**=समन्तात् वासनारूप शत्रुओं का छेदन करता है। यह भी शत्रुओं का छेदन करने में प्रवृत्त होता है। **यः**=जो **एवम्**=इसप्रकार **विद्वांसं व्रात्यम् उपवदति**=ज्ञानी व्रतीपुरुष के समीप उपस्थित होकर इन ज्ञानों व व्रतों की चर्चा करता है—इन ज्ञान व व्रत की बातों को ही पूछता है, ४. **सः**=वह **वै**=निश्चय से **बृहत् च**=विशाल हृदय का **रथन्तरस्य च**=शरीर-रथ से जीवन-यात्रा के मार्ग को पार करने की वृत्ति का, **आदित्यनां च**=विज्ञानों के आदानों का **च**=और **विश्वेषां देवानाम्**=सब दिव्यगुणों का **प्रियं धाम भवति**=प्रियधाम बनता है। इन सब बातों का वह निवासस्थान होता है। **तस्य**=उस विद्वान् व्रात्य के जीवन में **प्राच्यां दिशि**=प्रगति की दिशा में 'बृहत्, रथन्तर, आदित्य और विश्वेदेव' जीवन के साथी बनते हैं।

भावार्थ—जिस समय यह व्रतमय जीवनवाला पुरुष आलस्य को छोड़कर प्रगति की दिशा में आगे बढ़ता है तब इस दिशा में वह 'विशालहृदयता, शरीर-रथ से जीवनमार्ग को पार करने की वृत्ति, विज्ञानों का आदान व दिव्यगुणों के धारण' से अलंकृत जीवनवाला होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—५ **द्विपदाऽऽर्चीजगती**, ६ **साम्न्यनुष्टुप्**, ७ **पदपङ्क्तिः**, ८ **त्रिपदाप्राजापत्यात्रिष्टुप्**॥

श्रद्धा (कीर्ति और यश) मातरिश्वा पवमान

श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवतौ कल्मलिर्मणिः॥ ५॥
भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम्॥ ६॥
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः॥ ७॥

कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद॥ ८॥

१. प्राची दिशा में आगे बढ़नेवाले इस विद्वान् व्रात्य की **श्रद्धा पुंश्चली**=श्रद्धा प्रेरिका भावना होती है (प्रमोसं चालयति प्रेरयति)! यह अपने अग्रगति के मार्ग पर श्रद्धापूर्वक आगे बढ़ता है। इसके लिए **मित्रः**=प्राणशक्ति के संचार द्वारा मृत्यु से रक्षित करनेवाला (प्रमीते त्रायते) सूर्य **मागधः**=स्तुति पाठक होता है। सूर्य इन्हें प्रभु-स्तवन करता प्रतीत होता है। सूर्य प्रभु की अद्भुत विभूति है—यह प्रभु की महिमा का मानो गायन करता है। **विज्ञानं वासः**=विज्ञान इसका वस्त्र होता है। विज्ञान इसके आच्छादन का साधन बनता है। **अहः उष्णीषम्**=दिन इसका उष्णीष स्थानापन्न होता है। दिन को यह शिरोवेष्टन=मुकुट बनाता है। दिन के एक-एक क्षण को यह उपयुक्त करता हुआ उन्नति-शिखर पर पहुँचने के लिए यत्नशील होता है। **रात्री केशः**=रात्रि इसके केश बनते हैं। केश जैसे सिर के रक्षक होते हैं उसीप्रकार रात्रि इसके लिए रमयित्री होती हुई इसे स्वस्थ मस्तिष्क बनाती है। **हरितौ**=अन्धकार का हरण करनेवाले सूर्य और चन्द्र **प्रवतौ**=इसे विराट् पुरुष के कुण्डल प्रतीत होते हैं और **कल्मलिः**=तारों की ज्योति (splendour) **मणिः**=उसे विराट् पुरुष की मणि प्रतीत होती है। ये सूर्य-चन्द्र व तारों में प्रभु की महिमा को देखता है। २. **भूतं च भविष्यत् च**=भूत और भविष्यत् **परिष्कन्दौ**=इसके दास (servent) होते हैं। भूत से यह ग़लतियों को न करने का पाठ पढ़ता है और भविष्यत् को उज्ज्वल बनाने के स्वप्न लेता है तथा प्रवृद्ध पुरुषार्थवाला होता है। **मनः**=मन इसका **विपथम्**=विविध मार्गों से गति करनेवाला युद्ध का रथ होता है। मन के दृढ़ संकल्प से ही तो इसने जीवन-संग्राम में विजय पानी है। ३. **मातरिश्वा च पवमानश्च**=श्वास तथा उच्छ्वास इसके **विपथवाहौ**=मनरूपी रथ के वाहक घोड़े होते हैं। प्राणापान के द्वारा ही जीवन-रथ आगे बढ़ता है। **वातः सारथी**=क्रियाशीलता (वा गतौ) इस रथ का सारथि है। **रेष्मा प्रतोदः**=वासनाओं का संहार ही चाबुक है। ४. **कीर्तिः च यशः च**=प्रभु-गुणगान (glory, speach) व (कीर्तन तथा दीप्ति splendour) इसके **पुरः सरौ**=आगे चलनेवाले होते हैं। **यः एवं वेदः**=जो इसप्रकार इस सारी बात को समझ लेता है, वह भी इस मार्ग पर चलता है और **कीर्तिः गच्छति**=कीर्ति प्राप्त होती है तथा **यशः गच्छति**=यश प्राप्त होता है।

भावार्थ—विद्वान् व्रात्य जब प्राची दिशा में (अग्र गति की दिशा में) आगे बढ़ता है तब उसे श्रद्धा, कीर्ति व यशादि प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**९ साम्न्यनुष्टुप्, १० एकपदोष्णिक्, ११ द्विपदाऽऽर्षीभुरिक्त्रिष्टुप्, १२ आर्षीपरानुष्टुप्**॥

दक्षिणा दिक् में 'यज्ञायज्ञिय वामदेव्य यज्ञ यज्ञमान व पशुओं' की प्राप्ति

स उदतिष्ठत्स दक्षिणां दिशमनु व्य ∫ चलत्॥ ९॥
तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च।
पशवश्चानुव्य ∫ चलन्॥ १०॥
यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय
च पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति॥ ११॥
यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य
च पशूनां च प्रियं धाम भवति तस्य दक्षिणायां दिशि॥ १२॥

१. **सः**=वह व्रात्य **उदतिष्ठत्**=उठता है। आलस्य को छोड़कर आगे बढ़ता हुआ **सः**=वह

दक्षिणां दिशम्=नैपुण्य की दिशा को **अनुव्यचलत्**=अनुक्रमेण प्राप्त होता है, किसी भी क्षेत्र में निरन्तर आगे बढ़ता हुआ वह बड़ा निपुण बन जाता है। २. **तम्**=उस नैपुण्यप्राप्त व्रात्य को **यज्ञायज्ञियं च**=(सर्वेभ्यो यज्ञेभ्यः हितकरं वेदज्ञानम्) सब यज्ञों के लिए हितकर वेदज्ञान, **वामदेव्यं च**=सुन्दर, दिव्यगुणों (वाम lovely) के लिए हितकर प्रभु-स्तवन, **यज्ञः च**=श्रेष्ठतम कर्म, **यजमानाः च**=यज्ञशील पुरुष **च**=तथा **पशवः**=यज्ञघृत को प्राप्त कराने के लिए आवश्यक गवादि पशु **अनुव्यचलन्**=अनुकूलता से प्राप्त होते हैं। उसके अनुकूल गतिवाले होते हैं। ३. **सः**=वह व्रात्य विद्वान् **वै**=निश्चय से **यज्ञायज्ञियाय च**=यज्ञों के लिए हितकर वेदज्ञान के लिए, **वामदेव्याय च**=सुन्दर, दिव्यगुणों के लिए हितकर प्रभु-स्तवन के लिए, **यज्ञाय च**=यज्ञ के लिए, **यजमानाय च**=यज्ञशील पुरुष की प्राप्ति के लिए, **पशुभ्यः च**=गवादि पशुओं की प्राप्ति के लिए **आवृश्चते**=समन्तात् वासनारूप शत्रुओं का छेदन करता है। वह व्यक्ति भी ऐसा ही करता है, **यः**=जो **एवम्**=इसप्रकार **विद्वांसं व्रात्यं उपवदति**=ज्ञानी व्रतीपुरुष के समीप इसीप्रकार ज्ञानचर्चा करता है। ४. यह वासनारूप शत्रुओं का छेदन करनेवाला पुरुष **वै**=निश्चय से **यज्ञायजिस्य च**=यज्ञों के लिए हितकर वेदज्ञान का **वामदेवस्य च**=सुन्दर, दिव्यगुणों के लिए हितकर प्रभु-स्तवन का **यज्ञस्य च**=यज्ञ का, **यजमानस्य च**=यज्ञशील पुरुषों का, **पशूनां च**=यज्ञ का घृत प्राप्त करानेवाले गवादि पशुओं का **प्रियं धाम भवति**=प्रिय स्थान बनता है—ये सब इसे प्राप्त होते हैं, **तस्य**=उस विद्वान् व्रात्य के जीवन में **दक्षिणां दिशि**=दक्षिण दिशा में 'यज्ञायज्ञीय, वामदेव्य, यज्ञ, यजमान, पशु' जीवन के साथी बनते हैं।

भावार्थ—यह विद्वान् व्रात्य आलस्य को छोड़कर आगे बढ़ता हुआ नैपुण्य को प्राप्त करता है तो वह 'यज्ञों के लिए हितकर वेदज्ञान को, दिव्यगुणोत्पादक प्रभु-स्तवन को, यज्ञों को, यज्ञमानों व पशुओं' को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१३ द्विपदाऽऽर्चीजगती, १४ साम्नीपङ्क्तिः**॥

उषा, अमावास्या, पौर्णमासी

उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवतौ कल्मलिर्मणिः॥ १३॥
अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम्।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी
रेष्मा प्रतोदः। कीर्तिश्च यशश्च पुरः सरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या
यशो गच्छति य एवं वेद॥ १४॥

१. दक्षिण दिशा में—नैपुण्य की दिशा में गतिवाले इस विद्वान् व्रात्य की **उषाः**=उषा **पुंश्चली**=नारी के समान होती है, इसे कर्मों में प्रेरित करती है। यह उषा में ही उठकर कर्त्तव्य-कर्मों का प्रारम्भ करता है। **मन्त्रः मागधः**=वेदमन्त्र इसके स्तुति-पाठक होते हैं। यह मन्त्रों द्वारा प्रभु-स्तवन करता है। शेष मन्त्र पञ्चमवत्। २. **अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ**=अमावास्या और पौर्णमासी इसके सेवक होते हैं। अमावास्या से यह अपने जीवन में सूर्य-चन्द्र के समन्वय का पाठ पढ़ता है। मस्तिष्क में ज्ञानसूर्य को तथा हृदय में मनःप्रसादरूप चन्द्र को उदित करने का प्रयत्न करता है तथा पौर्णमासी से जीवन को पूर्ण चन्द्र की भाँति सोलह कला सम्पूर्ण बनाने के लिए यत्नशील होता है। शेष मन्त्र षष्ठवत्।

भावार्थ—यह विद्वान् व्रात्य आगे बढ़ता हुआ, नैपुण्य को प्राप्त करता हुआ, ऐश्वर्यसम्पन्न

होकर भी उषाकाल में प्रबुद्ध होकर मन्त्रों द्वारा प्रभु-स्तवन करता है। अपने जीवन में ज्ञान व मनःप्रसाद का समन्वय करता है और जीवन को पूर्ण व चन्द्र की भाँति सोलह कला सम्पन्न बनाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१५ साम्न्यनुष्टुप्, १६ साम्नीत्रिष्टुप्, १७ द्विपदाविराडार्षीपङ्क्तिः, १८ द्विपदाब्राह्मीगायत्री**॥

प्रतीची दिशा में 'वैरूप, वैराज, आपः, वरुण राजा'

स उदतिष्ठत्स प्रतीचीं दिशमनु व्य ऽचलत्॥ १५॥
तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्य ऽचलन्॥ १६॥
वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च
राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति॥ १७॥
वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च
राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि॥ १८॥

१. **सः**=वह व्रात्य विद्वान् **उदतिष्ठत्**=उठा और आलस्य को दूर भगाकर **प्रतीचीं दिशं अनुव्यचलत्**=प्रतीची दिशा की ओर 'प्रति अञ्च' प्रत्याहार की दिशा में चला। इन्द्रियों को इसने विषय-व्यावृत्त करने का प्रयत्न किया। २. इस प्रत्याहार के होने पर **तम्**=उस व्रात्य विद्वान् को **वैरूपं च**=विशिष्ट तेजस्वीरूप **वैराजं च**=विशिष्ट ज्ञानदीप्ति, **आपः च**=रेतःकण (आपः रेतो भूत्वा०), **वरुणः च राजा**=और जीवन को दीप्त करनेवाला (राजा), निर्द्वेषता का भाव **अनुव्यचलन्**=अनुकूलता से प्राप्त हुए। ३. **सः**=वह व्रात्य विद्वान् **वै**=निश्चय से **वैरूपाय च**=विशिष्ट तेजस्वीरूप के लिए, **वैराजाय च**=विशिष्ट ज्ञानदीप्ति के लिए, **अद्भ्यः च**=शरीर में रेतःकणों के रक्षण के लिए **च**=तथा **वरुणाय राज्ञः**=जीवन को दीप्त बनानेवाले निर्द्वेषता के भाव के लिए **आवृश्चते**=समन्तात् वासनाओं का छेदन करता है। यह पुरुष भी वासनाओं का छेदन करता है, **यः**=जो **एवम्**=इसप्रकार **व्रात्यम्**=व्रती **विद्वांसम्**=विद्वान् के **उपवदति**=समीप होकर इन बातों की चर्चा करता है ४. **सः**=वह **वैरूपस्य च**=विशिष्ट तेजस्वीरूप का, **वैराजाय च**=विशिष्ट ज्ञानदीप्ति का, **अपां च**=रेतःकणों का **च**=और **राज्ञः वरुणस्य**=जीवन को दीप्त बनानेवाले निर्द्वेषता के भाव का **प्रियं धाम भवति**=प्रिय स्थान बनता है। **तस्य**=उस विद्वान् व्रात्य के **प्रतीच्यां दिशि**=इस प्रत्याहार की दिशा में 'वैरूप, वैराज्ञ, आपः और वरुण राजा' साथी बनते हैं।

भावार्थ—यह व्रात्य विद्वान् प्रत्याहार के द्वारा 'विशिष्ट तेजस्वीरूप को, विशिष्ट ज्ञानदीप्ति को, रेतःकणों को तथा जीवन को दीप्त बनानेवाली निर्द्वेषता' को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१९ द्विपदाऽऽर्षीजगती, २० आसुरीगायत्री**॥

प्रत्याहार में सफल बनने के लिए

इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवतौ कल्मलिर्मणिः॥ १९॥
अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम्। मातरिश्वा च
पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः। कीर्तिश्च

यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद॥ २०॥

१. इस व्रात्य विद्वान् के प्रत्याहार की दिशा में चलने पर इस **पुंश्चली**=ज्ञानवाणी की अधिष्ठात्री देवता पत्नी के समान होती है—प्रेरणा देनेवाली होती है। **हसः मागधः**=हास्य इसका स्तुतिपाठक होता है, इसे अपने चारों ओर खिलते हुए फूल व चमकते हुए (twinkling) तारे प्रभु-स्तवन करते प्रतीत होते है। शेष पञ्चम मन्त्रवत्। २. **अह च रात्री च**=दिन और रात **परिष्कन्दौ**=सेवक (servant) होते हैं। दिन इसे यज्ञादि उत्तम कर्मों को करने का अवसर देता है और रात्री इसे अपने अन्दर फिर से शक्ति भरने में सहायक होती है। शेष सप्तमाष्टममन्त्रवत्।

भावार्थ—यह व्रात्य विद्वान् इस प्रत्याहार में सफलता प्राप्त करने के लिए सरस्वती का प्रिय बनता है, प्रसन्न रहता हुआ प्रभु-स्तवन करता है, दिन को यज्ञादि उत्तम कर्मों में व्यतीत करता है और रात्रि में विश्राम करता हुआ फिर से अपने में शक्ति भरता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**२१ साम्न्यनुष्टुप्, २२ साम्नीत्रिष्टुप्, २३ निचृदार्षीपङ्क्तिः, २४ द्विपदाब्राह्मीगायत्री**॥

उदीची दिशा में 'श्यैत, नौधस, सप्तर्षि, सोम राजा'

स उदतिष्ठत्स उदीचीं दिशमनु व्यचलत्॥ २१॥

तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्य ∫ चलन्॥ २२॥

श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति॥ २३॥

श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमस्य च राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि॥ २४॥

१. **सः**=वह व्रात्य **उदतिष्ठत्**=आलस्य छोड़कर उठ खड़ा हुआ और **सः**=वह इन्द्रियों को विषयों से व्यावृत्त करके **उदीचीं दिशं अनुव्यचलत्**=उत्तर दिशा की ओर—उन्नति की ओर क्रमशः चला। २. **तम्**=उन्नति की दिशा में चलते हुए उसको **श्यैतं च**=(श्यैङ् गतौ) गतिशीलता **नौधसं च**=(नौधा ऋषिर्भवति भवनं दधाति—नि०) प्रभु-स्तवन, **सप्तर्षयः च**='दो कान, दो आँखें, दो नासिका-छिद्र व मुख' रूप सप्तर्षयः और **राजा सोमः**=जीवन को दीप्त बनानेवाला सोम (वीर्यशक्ति)—ये सब **अनुव्यचलन्**=अनुकूलता से प्राप्त हुए। ३. **सः**=वह व्रात्य **वै**=निश्चय से **श्यैताय च**=गतिशीलता के लिए **नौधसाय च**=प्रभु-स्तवन के लिए, **सप्तर्षिभ्यः च**=कान आदि सप्तर्षियों के लिए **च**=और **राज्ञे सोमाय**=जीवन को दीप्त बनानेवाले सोम (वीर्य) के लिए **आवृश्चते**=समन्तात् वासनाओं का विनाश करता है। वह भी वासनाओं का विनाश करता है **यः**=जो **एवम्**=इसप्रकार **व्रात्यम्**=व्रती **विद्वांसम्**=विद्वान् को **उपवदति**=समीपता से प्राप्त होकर इस उन्नति के मार्ग की चर्चा करता है। ४. **सः**=वह व्रात्य विद्वान् **वै**=निश्चय से **श्यैतस्य च**=क्रियाशीलता का **नौधसस्य च**=प्रभु-स्तवन की वृत्ति का **सप्तर्षीणां च**=कान आदि सप्तर्षियों का **च**=और **राज्ञः सोमस्य**=जीवन को दीप्त बनानेवाले सोम का **प्रियं धाम भवति**=प्रिय स्थान बनता है। **तस्य**=उस व्रात्य विद्वान् के **उदीच्यां दिशि**=उत्तर दिशा में—उन्नति की दिशा में 'श्यैत, नवधस, सप्तर्षि व सोम राजा' साथी होते हैं।

भावार्थ—यह व्रात्य विद्वान् उन्नति की दिशा में आगे बढ़ता हुआ 'गतिशीलता, प्रभु-स्तवन, सप्तर्षियों द्वारा ज्ञानप्राप्ति तथा सोमरक्षण द्वारा दीप्त जीवन' को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—२५ **द्विपदाऽऽर्चीजगती, २६ साम्न्यनुष्टुप्, २७ पदपङ्क्तिः, २८ त्रिपदाप्राजापत्यात्रिष्टुप्**॥

विद्युत्, स्तनयित्नु, श्रुतविश्रुत

विद्युत्पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवतौ कल्मलिर्मणिः॥ २५॥
श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपथम्॥ २६॥
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः॥ २७॥
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद॥ २८॥

१. इस उन्नति की दिशा में चलनेवाले व्रात्य की **विद्युत् पुंश्चली**=बिजली के समान विशिष्ट ज्ञान की दीप्ति पत्नी होती है—प्रेरिका होती है। **स्तनयित्नु**=मेघ-गर्जना इसका **मागधः**=स्तुतिपाठ होता है। मेघ गर्जना में भी यह प्रभु की महिमा को देखता है। शेष पञ्चम मन्त्रवत्। २. **श्रुतं च विश्रुतं च**=प्रकृति-विज्ञान व अध्यात्म-विज्ञान इस व्रात्य विद्वान् के **परिष्कन्दौ**=सेवक होते हैं। प्रकृति-विज्ञान से यह अभ्युदय को सिद्ध करता है तो अध्यात्म-विज्ञान से यह निःश्रेयस की साधना करनेवाला होता है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—यह व्रात्य विद्वान् निरन्तर उन्नत होने के लिए, विशिष्ट ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करने के लिए यत्नशील होता है। यह मेघ-गर्जना में भी प्रभु-स्तवन होता हुआ देखता है। प्रकृति-विज्ञान इसके अभ्युदय का साधक होता है और आत्मविज्ञान इसे निःश्रेयस का अधिकारी बनाता है।

३. [तृतीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**रुद्रः**॥ छन्दः—१ **त्रिपदासमविषमागायत्री, २ त्रिपदाभुरिगार्चीत्रिष्टुप्, ३ द्विपदाप्राजापत्याऽनुष्टुप्, ४ त्रिपदास्वराट्प्राजापत्यापङ्क्तिः**॥

व्रात्य की आसन्दी

स संवत्सरमूर्ध्वो ऽतिष्ठत्तं देवा अब्रुवन्व्रात्य किं नु तिष्ठसीति॥ १॥
सो ऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति॥ २॥
तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन्॥ ३॥
तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ॥ ४॥

१. **सः**=वह व्रात्य विद्वान् **संवत्सरम्**=वर्षभर **ऊर्ध्वः अतिष्ठत्**=संसार से मानो ऊपर उठा हुआ ही, अपनी तपस्या में ही स्थित रहा। **तम्**=उसको **देवाःअब्रुवन्**=देववृत्ति के व्यक्तियों ने मिलकर कहा अथवा माता-पिता व आचार्यादि ने **इति**=इसप्रकार कहा कि—हे **व्रात्य**=व्रतमय जीवनवाले विद्वन्! **किम्**=क्या **नु**=अब भी **तिष्ठति इति**=इसप्रकार तपस्या में ही स्थित हुए हो। अब कहीं आश्रम में स्थित होकर लोकहित के दृष्टिकोण से कार्य आरम्भ करो न? २. इसप्रकार देवों के आग्रह पर **सः**=उस व्रात्य ने **इति**=इसप्रकार **अब्रवीत्**=कहा कि **मे**=मेरे लिए आप **आसन्दीं संभरन्तु**=आसन्दी का संभरण करने की कृपा कीजिए। 'मुझे कहाँ बैठकर कार्य करना चाहिए', उस बात का आप निर्देश कीजिए। ३. यह उत्तर पाने पर सब देवों ने **तस्मै व्रात्याय**=उस व्रात्य के लिए **आसन्दीं समभरन्**=आसन्दी प्राप्त कराई। वस्तुतः वह आसन्दी क्या थी? सारा काल ही उस आसन्दी के चार चरणों के रूप में था। इस आसन्दी के संभरण का कोई

शुभ मुहूर्त्त थोड़े ही निकालना था। शुभ कार्य के लिए सारा समय ही शुभ है। ४. देवों से प्राप्त कराई गई **तस्याः**=उस आसन्दी के **ग्रीष्मः च वसन्तः च**=ग्रीष्म और वसन्त ऋतु **दौ पादौ आस्ताम्**=दो पाँव थे तथा **शरद च वर्षा च दौ**=शरद और वर्षा दूसरे दो पाये बने। वस्तुतः इस व्रात्य ने न सर्दी देखनी है न गर्मी, न वर्षा न पतझड़। उसने तो सदा ही लोकहित के कार्यों में प्रवृत्त होना है।

भावार्थ—व्रात्य विद्वान् संसार से अलग रहकर तपस्या ही न करता रह जाए। उसे लोकहित के कार्यों को भी अवश्य करना ही चाहिए और इन शुभ कार्यों के लिए मुहूर्त्त ढूँढने की आवश्यकता नहीं। शुभ कार्य के लिए सारा समय शुभ ही है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**५ आर्चीबृहती, ६ आसुर्यनुष्टुप्, ७ साम्नीगायत्री, ८ आसुरीपङ्क्तिः, ९ आसुरीजगती**॥

'ज्ञान व उपासना'-मयी आसन्दी

बृहच्च॑ रथन्त॒रं चानू॒च्ये३॑ आस्तां॑ यज्ञाय॒ज्ञिय॑ं च वामदे॒व्यं च॑ तिर॒श्चये॑॥ ५॥
ऋच॒ः प्राञ्च॒स्तन्त॑वो॒ यजूं॑षि ति॒र्यञ्च॑ः॥ ६॥
वेद॑ आ॒स्तर॑णं॒ ब्रह्मोप॒बर्ह॑णम्॥ ७॥
सामा॑सा॒द उद्गी॒थो ऽ॑पश्र॒यः॥ ८॥
तामा॑स॒न्दीं व्रात्य॒ आरो॑हत्॥ ९॥

१. व्रात्य की इस आसन्दी के **बृहत् च रथन्तरं च**=हृदय की विशालता और शरीर-रथ से भवसागर को तैरने की भावना ही **अनूच्ये आस्ताम्**=दाएँ-बाएँ की लकड़ी की दो पाटियाँ थीं **च**=तथा **यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च**=यज्ञों के लिए हितकर वेदज्ञान तथा सुन्दर दिव्यगुणों के लिए हितकर प्रभु का उपासन ही **तिरश्च्ये**=दो तिरछे काष्ठ सेरुवे थे। २. **ऋचः**=ऋचाएँ—प्रकृतिविज्ञान के मन्त्र ही उस आसन्दी के **प्राञ्चः तन्तवः**=लम्बे फैले हुए तन्तु थे और **यजूंषि**=यज्ञ-प्रतिपादक मन्त्र ही **तिर्यञ्चः**=तिरछे फैले हुए तन्तु थे। **वेदः**=ज्ञान ही उस आसन्दी का **आस्तरणम्**=बिछौना था, **ब्रह्म**=तप (ब्रह्मः तपः) व तत्त्वज्ञान ही **उपबर्हणम्**=तकिया (सिर रखने का सहारा) था। **साम**=उपासना-मन्त्र व शान्तभाव ही **आसादः**=उस आसन्दी में बैठने का स्थान था और **उद्गीथः**=उच्चैः गेय 'ओम्' इसका **उपश्रयः**=सहारा था (टेक थी)। ३. **ताम्**=इस ज्ञानमयी **आसन्दीम्**=आसन्दी पर **व्रात्यः आरोहत्**=व्रात्य ने आरोहण किया।

भावार्थ—व्रात्य जिस आसन्दी पर आरोहण करता है वह ज्ञान व उपासना की बनी हुई है। उपासना से शक्ति प्राप्त करके व ज्ञान से मार्ग का दर्शन करके वह लोकहित के कार्यों में आसीन होता है—तत्पर होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१० प्राजापत्यात्रिष्टुप्, ११ विराड्गायत्री**॥

देवजनों के रक्षण में

तस्य॑ देवज॒नाः प॑रिष्क॒न्दा आस॑न्त्संक॒ल्पाः
प्रहा॒य्या॒ ३॑ विश्वा॑नि भूतान्यु॒पस॑दः॥ १०॥
विश्वा॑न्येवास्य॑ भूतान्यु॒पस॑दो॑ भवन्ति॒ य ए॒वं वेद॑॥ ११॥

१. **तस्य**=उस व्रात्य के **देवजनाः**=माता-पिता-आचार्यादि देव **परिष्कन्दाः आसन्**=चारों ओर गति करनेवाले रक्षक होते हैं। इनके रक्षण में यह अपना लोकहित का कार्य उत्तमता से

कर पाता है। **संकल्पाः**=उस-उस कार्य को करने के संकल्प इसके **प्रहाय्याः**=दूत होते हैं। इन संकल्पों के द्वारा यह अपने कार्यों को करने में समर्थ होता है। **विश्वानि भूतानि**=सब प्राणी **उपसदः**=इसके समीप बैठनेवाले होते हैं—इसी की शरण में जाते हैं, इसे ही वे अपना सहारा मानते हैं। २. **यः**=जो भी व्रात्य **एवं वेद**=इसप्रकार समझ लेता है कि उसका जीवनलक्ष्य 'भूतहित' ही है, **अस्य**=इसके **विश्वानि एव भूतानि**=सभी प्राणी **उपसदः भवन्ति**=समीप आसीन होनेवाले होते हैं।

भावार्थ—लोकहित में प्रवृत्त व्रात्य को 'माता-पिता-आचार्य' आदि देवों का रक्षण प्राप्त होता है। संकल्पों द्वारा यह अपने सन्देश को दूर तक पहुँचाने में समर्थ होता है और सब प्राणी इसकी शरण में आते हैं।

४. [चतुर्थं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१ दैवीजगती, २ आर्च्यनुष्टुप्, ३ द्विपदाप्राजापत्याजगती**॥

प्राच्याः दिशः

तस्मै॒ प्राच्या॑ दि॒शः॥ १॥
वास॒न्तौ मासौ॑ गो॒सा॒रा॒वकु॑र्वन्बृ॒हच्च॑ रथन्त॒रं चा॑नुष्टा॒तारौ॑॥ २॥
वास॒न्तावे॑नं॒ मासौ॒ प्राच्या॑ दि॒शो गो॑पायतो बृ॒हच्च॑
रथन्त॒रं चानु॑ तिष्ठतो॒ य एवं वेद॑॥ ३॥

१. **तस्मै**=उस व्रात्य के लिए **प्राच्याः दिशः**=पूर्व दिशा से सब देव **वासन्तौ मासौ**=वसन्त ऋतु के दो मासों को **गोसारौ अकुर्वन्**=रक्षक बनाते हैं **च**=तथा **बृहत् रथन्तरं च**=हृदय की विशालता तथा शरीर-रथ से जीवन-यात्रा को पूर्ण करने की प्रवृत्ति को **अनुष्ठातारौ**=विहित कार्यसाधक बनाते हैं। **एनम्**=इस व्रात्य को **वासन्तौ मासौ**=वसन्त ऋतु के दो मास **प्राच्याः दिशः गोपायतः**=पूर्व दिशा से रक्षित करते हैं **च**=तथा **बृहत् रथन्तरं च**=हृदय की विशालता तथा शरीर-रथ से भव-सागर को तैरने की प्रवृत्ति **अनुतिष्ठतः**=उसके कर्त्तव्य-कर्मों को करनेवाले होते हैं। इस व्यक्ति के ये कर्त्तव्य साधक होते हैं, **यः**=जो **एवं वेद**=इस तत्त्व को समझ लेता है, वह 'बृहत् और रथन्तर' के महत्त्व को जान लेता है।

भावार्थ—व्रात्य को वसन्त के दो मास पूर्व दिशा से रक्षित करते हैं और 'बृहत् तथा रथन्तर' इसे कर्त्तव्य-कर्मों में प्रवृत्त करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**४ प्राजापत्यागायत्री, ५ प्राजापत्यापङ्क्तिः, ६ आर्चीजगती**॥

दक्षिणायाः दिशः

तस्मै॒ दक्षि॑णाया दि॒शः॥ ४॥
ग्रैष्मौ॒ मासौ॑ गो॒सा॒रा॒वकु॑र्वन्य॒ज्ञाय॒ज्ञिय॑ं च वामदे॒व्यं चा॑नुष्टा॒तारौ॑॥ ५॥
ग्रैष्मा॑वे॒नं॒ मासौ॒ दक्षि॑णाया दि॒शो गो॑पायतो यज्ञाय॒ज्ञिय॑ं च वामदे॒व्यं
चानु॑ तिष्ठतो॒ य एवं वेद॑॥ ६॥

१. **तस्मै**=इस व्रात्य के लिए **दक्षिणायाः दिशः**=दक्षिणा दिक् से सब देवों ने **ग्रैष्मौ मासौ**=ग्रीष्म ऋतु के दो मासौ को **गोपतारौ अकुर्वन्**=रक्षक बनाया, **च**=तथा **यज्ञायज्ञियम्**=यज्ञों

के साधक वेदज्ञान को **वामदेव्यं च**=सुन्दर दिव्यगुणों की साधक ईश-उपासना को **अनुष्ठातारौ**=विहित कार्यसाधक बनाया। २. **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार 'यज्ञायज्ञिय व वामदेव्य' के महत्त्व को समझता है, **एनम्**=इस व्रात्य को **दक्षिणाया दिशः**=दक्षिण दिक् से **ग्रैष्मौ मासौ गोपायतः**=ग्रीष्म ऋतु के दो मास रक्षित करते हैं, **च**=तथा **यज्ञायज्ञियम्**=यज्ञों का साधक वेदज्ञान **वामदेव्यं च**=सुन्दर दिव्यगुणों का साधन प्रभु-पूजन **अनुतिष्ठतः**=विहित कार्यों को सिद्ध कराते हैं।

भावार्थ—व्रात्य को ग्रीष्मर्तु के दो मास दक्षिण दिशा से रक्षित करते हैं और 'यज्ञसाधक वेदज्ञान तथा सुन्दर दिव्यगुणों का साधन व प्रभु-पूजन' विहित कर्मों में प्रवृत्त करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**७ प्राजापत्यागायत्री, ८ आर्चीनुष्टुप्, ९ आर्चीत्रिष्टुप्**॥

प्रतीच्याः दिशः

तस्मै प्रतीच्या दिशः॥ ७॥
वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ॥ ८॥
वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च
वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद॥ ९॥

१. **तस्मै**=उस व्रात्य के लिए **प्रतीच्याः दिशः**=पश्चिम दिशा से सब देव **वार्षिकौ मासौ**=वर्षा ऋतु के दो मासों को **गोप्तारौ अकुर्वन्**=रक्षक बनाते हैं **च**=तथा **वैरूपम्**=विशिष्ट तेजस्विता-सम्पन्न रूप को **वैराजं च**=तथा विशिष्ट ज्ञानदीप्ति को **अनुष्ठातारौ**=विहित कार्यसाधक बनाते हैं। २. **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार 'वैरूप और विराज' के महत्त्व को समझता है, **एनम्**=इस व्रात्य को **वार्षिकौ मासौ**=वर्षा के दो मास **प्रतीच्याः दिशः**=पश्चिम दिशा से **गोपायतः**=रक्षित करते हैं, **च**=तथा **वैरूपम्**=विशिष्ट तेजस्विता-सम्पन्न रूप **वैराजं च**=और विशिष्ट ज्ञानदीप्ति **अनुतिष्ठतः**=विहित कर्मों को सिद्ध करने में प्रवृत्त होते हैं।

भावार्थ—व्रात्य को पश्चिम दिशा से वर्षा के दो मास रक्षित करते हैं और 'वैरूप तथा वैराज' विहित कर्मों को सिद्ध करने में समर्थ करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१० प्राजापत्यागायत्री, ११ साम्नीत्रिष्टुप्, १२ द्विपदाप्राजापत्याजगती**॥

उदीच्याः दिशः

तस्मा उदीच्या दिशः॥ १०॥
शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ्छ्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ॥ ११॥
शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च
नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद॥ १२॥

१. **तस्मै**=उस व्रात्य के लिए **उदीच्याः दिशः**=उत्तर दिशा से सब देवों ने **शारदौ मासौ**=शरद् ऋतु के दो मासों को **गोप्तारौ अकुर्वन्**=रक्षक बनाया, **च**=तथा **श्यैतम्**=क्रियाशीलता को **नौधसं च**=और प्रभु-स्तवन को **अनुष्ठातारौ**=विहित कार्यसाधक बनाया। २. **यः**=जो **एवं वेद**=इसप्रकार क्रियाशीलता व प्रभु-स्तवन के महत्त्व को समझता है **एनम्**=इस व्रात्य विद्वान् की **उदीच्याः दिशः**=उत्तर दिशा से **शारदौ मासौ**=शरद् ऋतु के दो मास **गोपायतः**=रक्षित करते

हैं **च**=और **श्यैतं नौधसं च**=क्रियाशीलता व प्रभु-स्तवन विहित कार्यों के सिद्ध करने में प्रवृत्त करते हैं।

भावार्थ—व्रात्य विद्वान् उत्तर दिशा की ओर से शरद् ऋतु के दो मासों से रक्षित किया जाता है तथा क्रियाशीलता व प्रभु-स्तवन इसे विहितकार्यों के अनुष्ठान में प्रवृत्त करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१३ दैवीजगती, १४ प्राजापत्याबृहती, १५ द्विपदाऽऽर्चीपङ्क्तिः**॥

ध्रुवायाः दिशः

तस्मै ध्रुवायां दिशः॥ १३॥

हैमन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ॥ १४॥

हैमन्तावेनं मासौ ध्रुवायां दिशो गोपायतो

भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद॥ १५॥

१. **तस्मै**=उस व्रात्य विद्वान् के लिए **ध्रुवायाः दिशः**=ध्रुव दिशा से **हैमन्तौ मासौ**=हेमन्त ऋतु के दो मासों को सब देवों ने **गोप्तारौ अकुर्वन्**=रक्षक बनाया तथा **भूमिं च अग्निं च**=इस भूमिरूप शरीर को तथा शरीर में स्थित अग्निरूप शक्ति को **अनुष्ठातारौ**=विहित कार्यसाधक बनाया। इस व्रात्य का शक्तिसम्पन्न शरीर विहितानुष्ठान में प्रवृत्त हुआ। २. **यः**=जो व्रात्य **एवं वेद**=इसप्रकार भूमि व अग्नि के प्रयोजन को समझता है **एनम्**=इस व्रात्य को **हेमन्तौ मासौ**=हेमन्त ऋतु के दो मास **ध्रुवायाः दिशः**=ध्रुवा दिशा से **गोपायतः**=रक्षित करते हैं और **भूमिः च अग्निः च अनुतिष्ठतः**=शरीर व शरीरस्थ शक्ति विहित कर्मों के अनुष्ठान में प्रवृत्त करते हैं।

भावार्थ—व्रात्य विद्वान् ध्रुवा दिशा से हेमन्त ऋतु के दो मासों द्वारा रक्षित होता है तथा इस विद्वान् को शक्तिसम्पन्न शरीरविहित कार्य के अनुष्ठान में समर्थ करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१६ दैवीजगती, १७ आर्च्युष्णिक्, १८ द्विपदाऽऽर्चीपङ्क्तिः**॥

ऊर्ध्वायाः दिशः

तस्मा ऊर्ध्वायां दिशः॥ १६॥

शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ॥ १७॥

शैशिरावेनं मासावूर्ध्वायां दिशो गोपायतो

द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद॥ १८॥

१. **तस्मै**=उस व्रात्य विद्वान् के लिए **ऊर्ध्वायाः दिशः**=ऊर्ध्वा दिशा से सब देवों ने **शैशिरौ मासौ**=शिशिर ऋतु के दो मासों को **गोप्तारौ अकुर्वन्**=रक्षक बनाया। **दिवं च आदित्य च**=मस्तिष्करूप द्युलोक को तथा ज्ञानरूप आदित्य को **अनुष्ठातारौ**=विहित कार्यसाधक बनाया। **यः**=जो विद्वान् **एवं वेद**=इसप्रकार ज्ञानसम्पन्न मस्तिष्क के महत्त्व को समझता है **एनम्**=इस व्रात्य को **शैशिरौ मासौ**=शिशिर ऋतु के दो मास **ऊर्ध्वायाः दिशः**=ऊर्ध्वा दिक् से **गोपायतः**=रक्षित करते हैं **च**=तथा **द्यौः आदित्यः च**=मस्तिष्क तथा ज्ञान (धीः+विद्या) **अनुतिष्ठतः**=इसके सब विहित कार्यों को सिद्ध करते हैं। यह ज्ञान-सम्पन्न मस्तिष्क से पवित्र कार्यों का ही सम्पादन करनेवाला होता है।

भावार्थ—ऊर्ध्वा दिक् से शिशिर के दो मास व्रात्य विद्वान् की रक्षा करते हैं और यह व्रात्य

विद्वान् ज्ञानसम्पन्न मस्तिष्क से विहित कार्यों का सम्पादन करता है।

सूचना—सम्पूर्ण सूक्त का सार यह है कि व्रात्य विद्वान् सब कालों में स्वस्थ जीवनवाला होता हुआ अपने जीवन में 'ज्ञान, कर्म व उपासना' का समन्वय करता हुआ शास्त्रविहित कर्त्तव्यों के अनुष्ठान में तत्पर रहता है।

५. [पञ्चमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**रुद्रः**॥ छन्दः—१ **त्रिपदासमविषमागायत्री**, २ **त्रिपदाभुरिगार्चीत्रिष्टुप्**, ३ **द्विपदाप्राजापत्यानुष्टुप्**॥

प्राच्याः दिशः अन्तर्देशात्

तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद्भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन्॥ १॥
भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः॥ २॥
नास्य पशून्न समानान्हिनस्ति य एवं वेद॥ ३॥

१. **तस्मै**=उस व्रात्य के लिए सब देवों ने **प्राच्याः दिशः अन्तर्देशात्**=पूर्व दिशा के अन्तर्देश (मध्यदेश) से **भवम्**=सर्वोत्पादक प्रभु को **इष्वासम्**=धनुर्धारी—धनुष् के द्वारा रक्षक **अनुष्ठातारम्**=सब क्रियाओं का करनेवाला **अकुर्वन्**=किया। इसे बाल्यकाल से ही यह शिक्षा प्राप्त हुई थी कि वे सर्वोत्पादक प्रभु तुम्हारे रक्षक हैं और सब क्रियाएँ उन्हीं की शक्ति व कृपा से होती हैं। २. **भवः**=वह सर्वोत्पादक **इष्वासः**=धनुर्धर प्रभु **एनम्**=इस व्रात्य को **प्राच्याः दिशः अन्तर्देशात्**=पूर्व दिशा के मध्यदेश से **अनुष्ठाता**=सब कार्यों को करने का सामर्थ्य देता हुआ **अनुतिष्ठति**=अनुकूलता से स्थित होता है। ३. **यः एवं वेद**=जो इस प्रकार उस 'भव, इष्वास, अनुष्ठाता' प्रभु को समझ लेता है **एनम्**=इस विद्वान् व्रात्य को **शर्वाः**=वह (शृ हिंसायाम्) प्रलय-कर्त्ता प्रभु (रुद्र), **न भवः**=न ही (ब्रह्म) सर्वोत्पादक प्रभु, **न ईशानः**=न ही ईश (शासक, विष्णु) **हिनस्ति**=विनष्ट करते हैं। **अस्य**=इसके **पशून् न**=पशुओं को भी नष्ट नहीं करते। **न समानान्**=न इसके समान—तुल्य गुणवाले व्यक्तियों को, बन्धु-बान्धवों को विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—यह व्रात्य विद्वान् पूर्वदिशा के अन्तर्देश में उस सर्वोत्पादक प्रभु को ही अपना, अपने पशुओं का, अपने समान बन्धु-बान्धवों का रक्षक जानता है, उन्हें ही कार्य करने की शक्ति देनेवाला समझता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**रुद्रः**॥ छन्दः—४ **त्रिपदास्वराट्प्राजापत्यापङ्क्तिः**, ५, ७, ९, ११, १३ **त्रिपदाब्राह्मीगायत्री** [**नास्य इत्यस्योक्तम्**], ६, ८, १२ **त्रिपदाककुप्**, १०, १४ **आर्षीगायत्री**, १५ **विराड्बृहती**, १६ **द्विपदाप्राजापत्याऽनुष्टुप्**॥

सब अन्तर्देशों से

तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन्॥ ४॥
शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः। नास्य पशून्न समानान्हिनस्ति य एवं वेद॥ ५॥
तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात्पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन्॥ ६॥
पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः। नास्य पशून्न समानान्हिनस्ति य एवं वेद॥ ७॥

तस्मा॒ उदी॑च्या दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शादु॒ग्रं दे॒वमि॑ष्वा॒सम॑नुष्टा॒तार॑मकुर्वन्॥ ८॥
उ॒ग्र ए॑नं दे॒व इ॑ष्वा॒स उदी॑च्या दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शाद॑नुष्टा॒ताऽनु॑
तिष्ठति॒ नैनं॑ श॒र्वो न भ॒वो ने॑शा॑नः।
नास्य॑ प॒शून्न स॑मा॒नान्हि॑नस्ति॒ य ए॒वं वेद॑॥ ९॥
तस्मै॑ ध्रु॒वाया॑ दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शाद्रु॒द्रमि॑ष्वा॒सम॑नुष्टा॒तार॑मकुर्वन्॥ १०॥
रु॒द्र ए॑नमिष्वा॒सो ध्रु॒वाया॑ दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शाद॑नुष्टा॒ताऽनु॑
तिष्ठति॒ नैनं॑ श॒र्वो न भ॒वो ने॑शा॑नः।
नास्य॑ प॒शून्न स॑मा॒नान्हि॑नस्ति॒ य ए॒वं वेद॑॥ ११॥
तस्मा॑ ऊ॒र्ध्वाया॑ दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शान्म॑हादे॒वमि॑ष्वा॒सम॑नुष्टा॒तार॑मकुर्वन्॥ १२॥
म॒हा॒दे॒व ए॑नमिष्वा॒स ऊ॒र्ध्वाया॑ दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शाद॑नुष्टा॒ताऽनु॑
तिष्ठति॒ नैनं॑ श॒र्वो न भ॒वो ने॑शा॑नः।
नास्य॑ प॒शून्न स॑मा॒नान्हि॑नस्ति॒ य ए॒वं वेद॑॥ १३॥
तस्मै॒ सर्वे॑भ्यो अन्तर्दे॒शेभ्य॒ ईशा॑नमिष्वा॒सम॑नुष्टा॒तार॑मकुर्वन्॥ १४॥
ईशा॑न एनमिष्वा॒सः सर्वे॑भ्यो अन्तर्दे॒शेभ्यो॑ऽनुष्टा॒ताऽनु॑
तिष्ठति॒ नैनं॑ श॒र्वो न भ॒वो ने॑शा॑नः॥ १५॥
नास्य॑ प॒शून्न स॑मा॒नान्हि॑नस्ति॒ य ए॒वं वेद॑॥ १६॥

१. **तस्मै**=उस व्रात्य के लिए **दक्षिणायाः दिशः अन्तर्देशात्**=दक्षिणदिशा के अन्तर्देश से **शर्वम्**=सर्वसंहारक प्रभु को सब देवों ने **इष्वासम्**=धुनर्धर रक्षक को तथा **अनुष्ठातारम्**=सब क्रियाओं का सामर्थ्य देनेवाला **अकुर्वन्**=किया। यह **इष्वासः शर्वः**=धनुर्धर—सर्वसंहारक प्रभु **एनम्**=इस व्रात्य को **दक्षिणायाः दिशः अन्तर्देशात्**=दक्षिणदिक् से मध्यदेश से **अनुष्ठाता अनुतिष्ठति**=सब कार्यों का सामर्थ्य देता हुआ अनुकूलता से स्थित होता है। २. **तस्मै**=उस व्रात्य के लिए **प्रतीच्याः दिशः अन्तर्देशात्**=पश्चिमदिशा के अन्तर्देश से **पशुपतिं इष्वासम्**=सब प्राणियों के रक्षक धनुर्धर प्रभु को सब देवों ने **अनुष्ठातारं अकुर्वन्**=सब कार्यों को करने का सामर्थ्य देनेवाला किया। यह **इष्वासः पशुपतिः**=धनुर्धर सब प्राणियों का रक्षक प्रभु **एनम्**=इस व्रात्य को **प्रतीच्याः दिशः अन्तर्देशात्**=पश्चिमदिशा के मध्यदेश से **अनुष्ठातानुतिष्ठति**=सब कार्यों को करने का सामर्थ्य देता हुआ अनुकूलता से स्थित होता है। ३. **तस्मै**=उस व्रात्य के लिए **उदीच्याः दिशः अन्तर्देशात्**=उत्तरदिशा के अन्तर्देश से **उग्रं देवम्**=प्रचण्ड सामर्थ्यवाले (so powerful), शत्रुभयंकर (fierce), उदात्त (highly noble) दिव्य प्रभु को सब देवों ने **इष्वासम्**=धनुर्धर को **अनुष्ठातारं अकुर्वन्**=सब कार्यों को करने की सामर्थ्य देनेवाला किया। यह **उग्रः देवः**=उदात्त, दिव्य प्रभु **इष्वासः**=धनुर्धर होकर **एनम्**=इस व्रात्य को **उदीच्याः दिशः अन्तर्देशात्**=ऊपर दिशा के मध्यदेश से **अनुष्ठाता अनुतिष्ठति**=सब कार्यों का सामर्थ्य देनेवाला होता हुआ अनुकूलता से स्थित होता है। ४. **तस्मै**=उस व्रात्य के लिए **ध्रुवायाः दिशः अन्तर्देशात्**=ध्रुवा दिशा के अन्तर्देश से **रुद्रम्**=शत्रुओं को रुलानेवाले प्रभु को सब देवों ने **इष्वासम्**=धनुर्धर को **अनुष्ठातारं अकुर्वन्**=सब कार्यों को करने का सामर्थ्य देनेवाला बनाया। यह **रुद्रः इष्वासः**=रुद्र धनुर्धर **एनम्**=इस व्रात्य को **ध्रुवायाः दिशः अन्तर्देशात्**=ध्रुवादिशा के मध्यदेश से **अनुष्ठाता अनुतिष्ठाति**=सब कार्यों को करने का सामर्थ्य देता हुआ अनुकूलता से

स्थित होता है। ५. **तस्मै**=उस व्रात्य के लिए **ऊर्ध्वायाः दिशः अन्तर्देशात्**=ऊर्ध्वा दिक् के अन्तर्देश से **महादेवम्**=सर्वमहान्, सर्वपूज्य देव को सब देवों ने **इष्वासम्**=धनुर्धर की **अनुष्ठातारं अकुर्वन्**=सब क्रियाओं का सामर्थ्य देनेवाला किया। **देवः**=यह महादेव **इष्वासः**=यह महान् धनुर्धर देव **एनम्**=इस व्रात्य को **ऊर्ध्वायाः दिशः अन्तर्देशात्**=ऊर्ध्वादिक् के अन्तर्देश से **अनुष्ठाता अनुतिष्ठति**=सब कार्यों को करने का सामर्थ्य देता हुआ अनुकूलता से स्थित होता है। ६. **तस्मै**=उस व्रात्य के लिए **सर्वेभ्यः अन्तर्देशेभ्यः**=सब मध्य देशों से सब देवों ने **ईशानम्**=सबके शासक प्रभु **इष्वासम्**=धनुर्धर को **अनुष्ठातारं अकुर्वन्**=कार्यों को करने का सामर्थ्य देनेवाला किया। यह **ईशानः इष्वासः**=सबका ईशान प्रभु धनुर्धर होकर **एनम्**=इस व्रात्य को **सर्वेभ्यः अन्तर्देशेभ्यः**=सब अन्तर्देशों से **अनुष्ठाता अनुतिष्ठति**=सब कार्यों को करने का सामर्थ्य देता हुआ अनुकूलता से स्थित होता है।

भावार्थ—एक व्रात्य विद्वान् दक्षिण दिशा के अन्तर्देश में सर्वसंहारक प्रभु को अपने रक्षक व सामर्थ्यदाता के रूप में देखता है। पश्चिम दिशा के अन्तर्देश से सब प्राणियों का रक्षक प्रभु इसे अपने रक्षक के रूप में दिखता है। उत्तर दिशा के अन्तर्देश से प्रचण्ड सामर्थ्यवाले प्रभु उसका रक्षण कर रहे हैं तो ध्रुवा दिशा के अन्तर्देश से रुद्र प्रभु उसके शत्रुओं को रुला रहे हैं। ऊर्ध्वा दिशा के अन्तर्देश से महादेव उसका रक्षण कर रहे हैं तो सब अन्तर्देशों से ईशान उसके रक्षक बने हैं। इन्हें ही वह अपने लिए सब कार्यों को करने का सामर्थ्य देनेवाला जानता है।

६. [षष्ठं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—१ **आसुरीपङ्क्तिः**, २ **आर्चीपङ्क्तिः**, ३ **आर्षीपङ्क्तिः**॥

ध्रुवा दिशा से 'भूमि, अग्नि, ओषधी, वनस्पति, वानस्पत्य व वीरुध'
स ध्रुवां दिशमनु व्य ऽचलत्॥ १॥
तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्य ऽचलन्॥ २॥
भूमेश्च वै सो ३ ग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां
च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ ३॥

१. **सः**=वह व्रात्य **ध्रुवां दिशं अनुव्यचलत्**=ध्रुवादिक् को लक्ष्य करके गतिवाला हुआ। उसने ध्रुवादिक् के अनुकूल गति की और परिणामतः **तम्**=उस व्रात्य को **भूमिः च अग्निः च**=पृथिवी का मुख्य देव अग्नि, **ओषधयः च वनस्पतयः च**=पृथिवी पर उत्पन्न होनेवाली ओषधी-वनस्पतियाँ तथा **वानस्पत्याः च वीरुधः च**=विविध प्रकार के फल, अन्न व लताएँ **अनुव्यचलन्**=अनुकूल गतिवाली हुईं। २. **यः**=जो **एवं वेद**=इसप्रकार इस ध्रुवादिशा को समझने का प्रयत्न करता है, **सः**=वह व्रात्य **वै**=निश्चय से **भूमेः च अग्नेः च**=भूमि और अग्नि का **ओषधीनां च वनस्पतिनां च**=ओषधियों व वनस्पतियों का **वानस्पत्यनां च वीरुधां च**=फलों, अन्नों व बेलों का **प्रियं धाम भवति**=प्रिय अवस्थान बनता है।

भावार्थ—व्रात्य विद्वान् ध्रुवादिशा के अनुकूल गतिवाला होकर 'भूमि, अग्नि, ओषधी, वनस्पति तथा वानस्पत्य व वीरुधों' का प्रिय पात्र बनता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—४ आसुरीपङ्क्तिः, ५ साम्नीत्रिष्टुप्, ६ निचृद्बृहती॥

ऊर्ध्वा दिक् में 'ऋत, सत्य, सूर्य-चन्द्र व नक्षत्र'

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्य ∫ चलत्॥ ४॥
तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्य ∫ चलन्॥ ५॥
ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च
नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ ६॥

१. **सः**=वह व्रात्य **ऊर्ध्वां दिशं अनुव्यचलत्**=ऊर्ध्वादिक् का लक्ष्य करके गतिवाला हुआ। उस समय **तम्**=उस व्रात्य को **ऋतं च सत्यं च**=भौतिक जगत् के नियम (सब भौतिक क्रियाओं की नियमितता) तथा अध्यात्म जगत्-नियम (शुद्ध, नैतिक आचरण), **सूर्यः च चन्द्रः नक्षत्राणि च**=सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र ये सब **अनुव्यचलन्**=अनुकूलता से प्राप्त हुए। २. **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार ऊर्ध्वादिक् को समझता है, **सः**=वह व्रात्य **वै**=निश्चय से **ऋतस्य च सत्यस्य च**=ऋत और सत्य का तथा **सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च**=सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों का **प्रियं धाम भवति**=प्रियस्थान बनता है।

भावार्थ—एक व्रात्य विद्वान् ऊर्ध्वादिक् की ओर ध्यान करता है तो उसे सृष्टि में ऋत और सत्य कार्य करते हुए दिखते हैं तथा सूर्य, चन्द्र व नक्षत्रों में प्रभु की महिमा दिखती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**७ आसुरीबृहती, ८ साम्नीपङ्क्तिः, ९ प्राजापत्यात्रिष्टुप्**॥

ऊर्ध्वा दिक् में 'ऋक्, यजुः, सत्य व ब्रह्म (अथर्व)'

स उत्तमां दिशमनु व्य ∫ चलत्॥ ७॥
तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्य ∫ चलन्॥ ८॥
ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ ९॥

१. **सः**=वह व्रात्य **उत्तमां दिशं अनुव्यचलत्**=उत्तमादिक् का लक्ष्य करके गतिवाला हुआ। उसने जीवन को उत्तम बनाने का दृढ़ संकल्प किया **तम्**=उस उत्तमादिक् की ओर गतिवाले व्रात्य को **ऋचः च सामानि च**=ऋचाएँ व साम—विज्ञानमन्त्र व उपासनामन्त्र **च**=तथा **यजूंषि च ब्रह्म च**=यज्ञ-प्रतिपादक मन्त्र तथा ब्रह्मज्ञान देनेवाले अथर्वमन्त्र **अनुव्यचलन्**=अनुकूलता से प्राप्त हुए। २. **सः**=वह व्रात्य **वै**=निश्चय से **ऋचां च साम्नां च**=ऋचाओं और साममन्त्रों का **च**=और **यजुषां ब्रह्मणश्च**=यज्ञ प्रतिपादक मन्त्रों व ब्रह्मज्ञानप्रद मन्त्रों का **प्रियं धाम भवति**=प्रिय स्थान बनता है, **यः**=जो व्रात्य **एवं वेद**=इसप्रकार उत्तमा दिक् में अनुकूलता से गति का विचार करता है।

भावार्थ—उत्तमादिक् में गति का संकल्प करनेवाला व्रात्य 'ऋक्, यजुः, साम व अथर्व (ब्रह्म)' मन्त्रों का प्रिय स्थान बनता है। इनके द्वारा ही तो उसने जीवन को उत्तम बनाना है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१० आसुरीबृहती, ११ साम्नीत्रिष्टुप्, १२ निचृद्बृहती**॥

बृहती दिशा में 'इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी'

स बृहतीं दिशमनुव्य ∫ चलत्॥ १०॥

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्य ∫ चलन्॥ ११॥
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च
नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ १२॥

१. **सः**=वह व्रात्य **बृहतीं दिशं अनुव्यचलत्**=बृहती दिशा—वृद्धि की दिशा का लक्ष्य करके चला। **तम्**=उस बृहती दिशा में चलनेवाले व्रात्य को **इतिहासः पुराणं च**=सृष्टि-उत्पत्ति आदि का नित्य इतिहास और जगदुत्पत्ति आदि का वर्णनरूप पुराण **च**=तथा **गाथाः नाराशंसीः च**=किसी का दृष्टान्त-दार्ष्टान्तरूप कथा-प्रसंग कहनारूप गाथाएँ तथा मनुष्यों के प्रसंशनीय कर्मों का कहनारूप नाराशंसी **अनुव्यचलन्**=अनुकूलता से प्राप्त हुई। इनके द्वारा ही वस्तुतः वह वेद व्याख्यान को सुन्दरता से कर पाया। २. **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार इतिहास आदि के महत्त्व को समझता है, **सः**=वह व्रात्य **वै**=निश्चय से **इतिहासस्य पुराणस्य च**=इतिहास व पुराण का **च**=तथा **गाथानां नाराशंसीनां च**=गाथाओं व नाराशंसियों का **प्रियं धाम भवति**=प्रिय धाम होता है। इनके द्वारा वह वेद को खूब व्याख्यात कर पाता है।

भावार्थ—एक व्रात्य विद्वान् 'इतिहास, पुराण, गाथा व नाराशंसी' द्वारा वेद का वर्धन—व्याख्यान करता हुआ 'बृहती दिक्' की ओर चलता है—वृद्धि की दिशा में आगे बढ़ता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१३ आसुरीबृहती, १४ आर्चीत्रिष्टुप्, १५ विराड्जगती**॥

परमा दिशा में 'यज्ञासियां, यज्ञमान व पशु'

स परमां दिशमनु व्य ∫ चलत्॥ १३॥
तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च
यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्य ∫ चलन्॥ १४॥
आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य
च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ १५॥

१. **सः**=वह व्रात्य **परमां दिशं अनुव्यचलत्**=परमा दिशा की ओर गतिवाला हुआ—सर्वोत्कृष्ट यज्ञीय मार्ग की ओर गतिवाला हुआ। **तम्**=उस व्रात्य को **आहवनीयः च गार्हपत्यः च दक्षिणा अग्निः च**=आहवनीय, गार्हपत्य व दक्षिणा अग्नि नामक तीनों अग्नियाँ **च**=और **यज्ञः यजमानः च पशवः च**=यज्ञ, यजमान और यज्ञसाधक गवादि पशु **अनुव्यचलन्**=अनुकूलता से प्राप्त हुए। २. **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार इस यज्ञिय परमा दिशा को समझ लेता है, **सः**=वह व्रात्य **वै**=निश्चय से **आहवनीयस्य च गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेः च**=आहवनीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि नामक तीनों अग्नियों का **च**=और **यज्ञस्य यज्ञमानस्य च पशुनां च**=यज्ञ, यजमान व यज्ञ के लिए घृतादि पदार्थों को प्राप्त करानेवाले गवादि पशुओं का **प्रियं धाम भवति**=प्रिय आश्रय-स्थान बनता है।

भावार्थ—एक व्रात्य विद्वान् यज्ञों द्वारा परमा दिशा में आगे बढ़ने का संकल्प करता है। इसे 'यज्ञासियां व यज्ञ, यजमान व यज्ञसाधक पशु' सब अनुकूलता से प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१६ आसुरीबृहती, १७ आर्चीपङ्क्तिः, १८ विराड्जगती**॥

अनादिष्टा दिक् में 'ऋतुएँ, आर्तव, लोक, लौक्य मास, अर्धमास व अहोरात्र'

सोऽनादिष्टां दिशमनु व्य ऽ चलत्॥ १६॥
तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लोक्याश्च
मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्य ऽ चलन्॥ १७॥
ऋतूनां च वै आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां
चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ १८॥

१. **सः**=वह व्रात्य **अनादिष्टां दिशाम्**=जिसमें किसी प्रकार का प्रयोजन (aim, intention) नहीं है, ऐसी एकदम निष्कामता की दिशा में **अनुव्यचलत्**=चला। **तम्**=उस व्रात्य को **ऋतवः च आर्तवाः च**=सब ऋतुएँ व ऋतुजनित सब पदार्थ **च**=और **लोकः लौक्याः च**=सब लोक और लोकों में होनेवाले पदार्थ **च**=तथा **मासाः अर्धमासाः च अहोरात्रे च**=महीने, पक्ष व दिन-रात **अनुव्यचलन्**=अनुकूलता से प्राप्त हुए। २. **यः एवं वेद**=इसप्रकार जो अनादिष्टा निष्कामता की दिशा के महत्त्व को समझ लेता है, **सः**=वह व्रात्य **वै**=निश्चय से **ऋतुनां च आर्तवानां च**=ऋतुओं का और ऋतुजनित पत्र-पुष्प-फलों का **च**=और **लोकानां लौक्यनां च**=लोकों का और लोकों में होनेवालों का **च**=तथा **मासानां अर्धमासां च अहोरात्रयोः च**=महीनों, पक्षों व दिन-रात का **प्रियं धाम भवति**=प्रिय धाम बनता है।

भावार्थ—निष्काम होकर अनादिष्टा दिक् में आगे और आगे बढ़ने पर इस व्रात्य को सब ऋतुएँ, लोक व काल अनुकूलता से प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१९ आर्च्युष्णिक्, २० साम्न्यनुष्टुप्, २१आर्षीबृहती**॥

अनावृत्ता दिशा में 'दिति, अदिति, इडा, इन्द्राणी'

सोऽनावृत्तां दिशमनु व्य ऽ चलत्ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत॥ १९॥
तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्य ऽ चलन्॥ २०॥
दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम
भवति य एवं वेद॥ २१॥

१. **सः**=वह व्रात्य **अनावृत्तां दिशं अनुव्यचलत्**=अनावृत्ता दिशा में अनुकूलता से गतिवाला हुआ **ततः**=तब **न आवर्त्स्यन् अमन्यत**='लौटूँगा नहीं', ऐसा उसने विचार किया। 'आगे और आगे चलते चलना, लौटना नहीं', वही वस्तुतः एक संन्यस्त का आदर्श है। **तम्**=उस व्रात्य को इस अनावृत्ता दिशा में चलने पर **दितिः च अदितिः च**=वासनाओं का खण्डन और स्वास्थ्य का अखण्डन (पवित्रता व स्वास्थ्य) **च**=तथा **इडा इन्द्राणी च**=वेदवाणी और इन्द्रशक्ति **अनुव्यचलन्**=अनुकूलता से प्राप्त हुई। २. **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार न लौटने की दिशा के महत्त्व को समझ लेता है **सः**=वह व्रात्य **वै**=निश्चय से **दितेः च अदितेः च**=वासना-विनाश और स्वास्थ्य के अविनाश का **च**=तथा **इडायाः इन्द्राण्याः च**=वेदवाणी व इन्द्रशक्ति का **प्रियं धाम भवति**=प्रिय आधार बनता है।

भावार्थ—हम 'आगे बढ़ना और न लौटने का' व्रत लेकर 'पवित्र, स्वस्थ, ज्ञानी व

आत्मशक्ति-सम्पन्न' बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—२२ **परोष्णिक्, २३ आर्चीत्रिष्टुप्**॥

विराट्, देव, देवता

स दिशोऽनु व्य ⌠चलत्तं विराडनु व्य ⌠चलत्सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः॥ २२॥
विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च
देवतानां प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ २३॥

१. **सः**=वह व्रात्य **दिशः**=वेद के निर्देशों के अनुसार **अनुव्यचलत्**=गतिवाला हुआ, परिणामतः **तम्**=उस व्रात्य को **विराट्**=विशिष्ट दीप्ति **च**=और **सर्वेदेवाः**=सब दिव्यभाव, **च**=और **सर्वाः देवताः**=सब दिव्यशक्तियाँ **अनुव्यचलन्**=अनुकूलता से प्राप्त हुईं। २. **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार प्रभु-निर्देशों के पालन के महत्त्व को समझ लेता है **सः**=वह व्रात्य **वै**=निश्चय से **विराजः च**=विशिष्ट ज्ञानदीप्ति का **च**=और **सर्वेषां देवानाम्**=सब दिव्यभावों का **च**=तथा **सर्वासां देवतानाम्**=सब दिव्यशक्तियों का **प्रियं धाम भवति**=प्रिय निवासस्थान बनता है।

भावार्थ—एक व्रात्य विद्वान् वेद-निर्देशों के अनुसार चलता हुआ 'विशिष्ट ज्ञानदीप्ति को, सब दिव्यभावों को तथा सब दिव्यशक्तियों' को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—२४ **आसुरीबृहती, २५ आर्च्यनुष्टुप्, २६ विराड्बृहती**॥

प्रजापति परमेष्ठी तथा पिता, पितामह

स सर्वानन्तर्देशाननु व्य ⌠चलत्॥ २४॥
तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्य ⌠चलन्॥ २५॥
प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य
च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ २६॥

१. **सः**=वह व्रात्य **सर्वान् अन्तर्देशान् अनुव्यचलत्**=सब अन्तर्देशों में—दिशाओं के मध्यमार्गों में अनुकूलता से गतिवाला हुआ। अविरोध से यह अपने मार्ग पर बढ़नेवाला बना **च**=और **तम्**=उस व्रात्य को **प्रजापतिः च**=प्रजारक्षक प्रभु **परमेष्ठी च**=सर्वोपरि स्थान में स्थित प्रभु **पिता च पितामहः च**=पिता और पितामह **अनुव्यचलन्**=अनुकूलता से प्राप्त हुए, अर्थात् इस व्रात्य को प्रभु व पिता उत्तम प्रेरणा देनेवाले बने। २. **यः**=जो **एवं वेद**=इसप्रकार अविरोध से सब अन्तर्देशों में चलने के महत्त्व को समझ लेता है, **सः**=वह व्रात्य **वै**=निश्चय से **प्रजापतेः**=प्रजारक्षक प्रभु का **परमेष्ठिनः च**=और परम स्थान में स्थित प्रभु का **च**=और **पितुः पितामहस्य च**=पिता व पितामह का **प्रियं धाम भवति**=प्रिय धाम बनता है।

भावार्थ—एक व्रात्य विद्वान् सब अन्तर्देशों में (दिङ्मध्यों में) अविरोध से चलता हुआ सर्वरक्षक व सर्वश्रेष्ठ प्रभु का तथा पिता व पितामह का प्रिय बनता है।

७. [सप्तमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—१ **त्रिपदानिचृद्गायत्री, २ एकपदाविराड्बृहती, ३ विराडुष्णिक्**॥

महिमा-सद्भूः, समुद्रः

स महिमा सद्भूर्भूत्वान्तं पृथिव्या अगच्छत्स समुद्रो ⌠ऽभवत्॥ १॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चापश्च
श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्य ऽ वर्तयन्त॥ २॥
ऐनमापो गच्छत्यैनं श्रद्धा गच्छत्यैनं वर्षं गच्छति य एवं वेद॥ ३॥

१. **सः**=वह व्रात्य **महिमा**=(मह पूजायाम्) पूजा की वृत्तिवाला—प्रभुपूजनपरायण तथा **सद्रुः**=द्रुतगति से युक्त—अतिकर्मनिष्ठ **भूत्वा**=होकर **पृथिव्याः अन्तम्**=पृथिवी के अन्त को—पार्थिव भागों की समाप्ति को **आगच्छत्**=प्राप्त हुआ और परिणामतः **सः**=वह व्रात्य **समुद्रः**=अत्यन्त आनन्द-(मोद)-मय जीवनवाला हुआ। पार्थिव भागों से ऊपर उठकर प्रभुस्मरणपूर्वक कर्त्तव्यकर्मों में प्रवृत्त होना ही आनन्द का मार्ग है। २. **तम्**=उस व्रात्य को **प्रजापतिः च परमेष्ठी च**=प्रजारक्षक, परम स्थान में स्थित प्रभु, **पिता च पितामहः च**=पिता और पितामह, **आपः च श्रद्धा च**=(आपः रेतो भूत्वा) शरीरस्थ रेतःकण और श्रद्धा की भावना **वर्षं भूत्वा**=आनन्द की वृष्टि का रूप धारण करके **अनुवर्तयन्त**=अनुकूलता से कर्मों में प्रवृत्त करते हैं। 'प्रभु प्रेरणा, बड़ों की प्रेरणा तथा शक्ति और श्रद्धा' इसे कर्त्तव्य-कर्मों में प्रेरित करते हैं। यह उन्हीं में आनन्द का अनुभव करता है। ३. **एनम्**=इस व्रात्य को **आपः**= शरीरस्थ रेतःकण **आगच्छन्ति**=समन्तात् प्राप्त होते है। **एनम्**=इसे **श्रद्धा**=श्रद्धा **आगच्छति**=प्राप्त होती है। **एनम्**=इसे **वर्षम्**=आनन्द की वृष्टि **आगच्छति**=प्राप्त होती है। ये उस व्रात्य को प्राप्त होती हैं जो **एवं वेद**=इस प्रकार कर्त्तव्यकर्मों में प्रवृत्त होने के महत्त्व को समझ लेता है। वह यह समझ लेता है कि परमेष्ठी बनने का उपाय प्रजापति बनना ही है, अर्थात् सर्वोच्च स्थिति तभी प्राप्त होती है जब हम प्रजारक्षणात्मक कर्मों में प्रवृत्त हों।

भावार्थ—व्रात्य प्रभुपूजन-परायण होकर कर्त्तव्यकर्मों में लगा रहता है, पार्थिव भोगों से ऊपर उठकर आनन्दमय जीवनवाला होता है। इसे प्रभु-प्रेरणा, बड़ों की प्रेरणा तथा शक्ति और श्रद्धा सदा कर्मों में प्रेरित करती हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—४ **एकपदागायत्री**, ५ **पङ्क्तिः**॥

श्रद्धा, यज्ञ, प्रकाश तथा अन्न और अन्नाद्य

तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त॥ ४॥
ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छत्यैनमन्नं
गच्छत्यैनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद॥ ५॥

१. **तम्**=उस व्रात्य को **श्रद्धा च यज्ञः च**=श्रद्धा और यज्ञ **लोकः च**=प्रकाश, **अन्नं च अन्नाद्यं च**=जौ, चावलादि अन्न तथा भात आदि खाने योग्य पदार्थ **भूत्वा**=(भू गतौ) प्राप्त होकर **अभिपर्यावर्तन्त**=अभ्युदय व निःश्रेयस (अभि) के साधक कर्मों में प्रवृत्त करते हैं। २. **यः**=जो **एवं वेद**=इसप्रकार 'श्रद्धा, यज्ञ व प्रकाश के तथा अन्न और अन्नाद्य' के महत्त्व को समझ लेता है, **एनम्**=इस व्रात्य को **श्रद्धा आगच्छति**=श्रद्धा प्राप्त होती है, **एनम्**=इसे **यज्ञः आगच्छति**=यज्ञ प्राप्त होता है, **एनम्**=इसको **लोकः**=प्रकाश **आगच्छति**=प्राप्त होता है, **एनम्**=इसे **अन्नम्**=अन्न **आगच्छति**=प्राप्त होता है। **एनम्**=इसे **अन्नाद्यं आगच्छति**=खानेयोग्य भातादि पदार्थ प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—यह व्रात्य 'श्रद्धा, यज्ञ, प्रकाश, अन्न व अन्नाद्य' से युक्त होकर अभ्युदय व निःश्रेयस-साधक कर्मों में प्रवृत्त होता है।

८. [अष्टमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१ साम्न्युष्णिक्, २ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ३ आर्चीपङ्क्तिः**॥

राजन्य

सो ऽरज्यत ततो राजन्यो ऽजायत॥ १॥
स विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत्॥ २॥
विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ ३॥

१. **सः अरज्यत**=इस व्रात्य ने प्रजाओं का रञ्जन किया। **ततः**=उस रञ्जन के कारण **राजन्यः**=राजन्य **अजायत**=हो गया। 'राजति' दीप्त जीवनवाला बना। **सः**=वह प्रजा का रञ्जन करनेवाला व्रात्य **सबन्धून् विशः**=बन्धुओंसहित प्रजाओं का तथा **अन्नं अन्नाद्यं अभि**=अन्न और अन्नाद्य का लक्ष्य करके **उदतिष्ठत्**=उत्थानवाला हुआ। उसने बन्धुओं व प्रजाओं की स्थिति को उन्नत करने का प्रयत्न किया कि अन्न व अन्नाद्य की कमी न हो। कोई भी भूखा न मरे। २. **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार समझ लेता है कि उसने बन्धुओं व प्रजाओं को उन्नत करना है और अन्न व अन्नाद्य की कमी नहीं होने देनी, **सः**=वह व्रात्य **वै**=निश्चय से **सबन्धूनां च**=अपने समान बन्धुओं का **विशाम् च**=प्रजाओं का तथा **अन्नस्य अन्नाद्यस्य च**=अन्न और अन्नाद्य का **प्रियं धाम भवति**=प्रिय स्थान बनता है।

भावार्थ—एक व्रात्य लोकहित के कार्यों में प्रवृत्त हुआ-हुआ बन्धुओं व प्रजाओं को उन्नत करने का प्रयत्न करता है, अन्न व अन्नाद्य की कमी न होने देने के लिए यत्नशील होता है। इसप्रकार प्रजाओं का रञ्जन करता हुआ यह राजन्य होता है।

९. [नवमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१ आसुरीजगती, २ आर्चीगायत्री, ३ आर्चीपङ्क्तिः**॥

'सभा, समिति, सेना, सुरा' का अनुचलन

स विशोऽनु व्य चलत्॥ १॥
तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्य चलन्॥ २॥
सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ ३॥

१. **सः**=वह गत सूक्त का राजन्य व्रात्य **विशः अनुव्यचलत्**=प्रजाओं की उन्नति का लक्ष्य करके गतिवाला हुआ। 'प्रजा-समृद्धि' ही उसके शासन का धेय बना। ऐसा होने पर **तम्**=उस राजन्य व्रात्य को **सभा च समितिः च**=व्यवस्थापिका सभा व कार्यकारिणी समिति **च**=तथा सेना **सुरा च**=(सुर ऐश्वर्य) राष्ट्ररक्षक सेना व राज्यकोष (राज्यलक्ष्मी) **अनुव्यचलन्**=अनुकूलता से प्राप्त हुए। २. **यः एवं वेद**=जो राजन्य व्रात्य 'प्रजा-समृद्धि' को ही शासन का लक्ष्य समझ लेता है **सः**=वह व्रात्य **वै**=निश्चय से **सभायाः च समितेः च**=सभा व समिति का **च**=तथा **सेनायाः सुरायाः च**=सेना व राज्यलक्ष्मी का **प्रियं धाम भवति**=प्रिय स्थान बनता है।

भावार्थ—प्रजा की उन्नति को ही शासन का लक्ष्य समझनेवाला राजन्य व्रात्य—व्रती राजा—सभा-समिति, सेना व सुर (लक्ष्मी) का प्रिय बनता है।

१०. [दशमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—१ **द्विपदासाम्नीबृहती,** २ **त्रिपदाऽऽर्चीपङ्क्तिः**॥

राजा द्वारा विद्वान् व्रात्य का सत्कार

तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत्॥ १॥

श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत्तथा क्षत्राय ना वृश्चते तथा राष्ट्राय ना वृश्चते॥ २॥

१. **तत्**=इसलिए **यस्य राज्ञः गृहान्**=जिस राजा के घर को **एवं विद्वान् व्रात्यः**=इसप्रकार ज्ञानी व्रती **अतिथिः आगच्छेत्**=अतिथिरूपेण प्राप्त हो, राजा को चाहिए कि **एनम्**=इसको **आत्मनः श्रेयांसम्**=अपने से अधिक श्रेष्ठ को **मानयेत्**=मान दे तथा वैसा करने पर यह राजा **क्षत्राय**=क्षतों से त्राण करनेवाले बल के लिए **न आवृश्चते**=अपने को छिन्न करनेवाला नहीं होता तथा वैसा करने पर **राष्ट्राय**=राष्ट्र के लिए **न आवृश्चते**=अपने को छिन्न करनेवाला नहीं होता, अर्थात् यह विद्वान् व्रात्य अतिथि का सत्कार करनेवाला राजा उससे उत्तम प्रेरणाएँ प्राप्त करके बल व राष्ट्र का वर्धन करनेवाला होता है।

भावार्थ—राजा राष्ट्र में आये विद्वान् व्रात्य का उचित सत्कार करे। उससे उत्तम प्रेरणाएँ प्राप्त करता हुआ राष्ट्र के बल व ऐश्वर्य का वर्धन करनेवाला हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—३ **द्विपदाप्राजापत्यापङ्क्तिः,** ४ **त्रिपदावर्धमानागायत्री,** ५ **त्रिपदासाम्नीबृहती**॥

'ब्रह्म+क्षत्र' का उत्थान

अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति॥ ३॥

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रा विशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति॥ ४॥

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम्॥ ५॥

१. **अतः**=इसप्रकार राजा के द्वारा विद्वान् व्रात्य का मान करने से **वै**=निश्चयपूर्वक **ब्रह्म च क्षत्रं च**=ब्रह्म और क्षत्र—ज्ञान और बल—दोनों **उदतिष्ठताम्**=उन्नत होते हैं—उथित होते हैं। **ते**=वे ब्रह्म और **क्षत्र अब्रूताम्**=कहते हैं **इति**=कि **कं प्रविशाव**=हम किसमें प्रवेश करें। २. **अतः**=इस राजा द्वारा व्रात्य के सत्कार से उत्पन्न हुआ-हुआ **ब्रह्म**=ज्ञान **वै**=निश्चय से **बृहस्पतिं एव**=ब्रह्मणस्पति—वेदज्ञ विद्वान् पुरोहित में ही **प्रविशतु**=प्रवेश करे तथा **वा**=उसीप्रकार निश्चय से **क्षत्रम्**=बल **इन्द्रम्**=राष्ट्रशत्रुओं के विदारक राजा में प्रवेश करे, **इति**=यह निर्णय ठीक है। ३. **अतः**=इस निर्णय के होने पर **वै**=निश्चय से **ब्रह्म**=ज्ञान **बृहस्पतिं एव प्राविशत्**=बृहस्पति में ही प्रविष्ट हुआ और **क्षत्रं इन्द्रम्**=बल ने शत्रुविदारक राजा में आश्रय किया।

भावार्थ—राजा द्वारा विद्वान् व्रात्यों का आदर करने पर राष्ट्र पुरोहित बृहस्पति ब्रह्मसम्पन्न होता है, शत्रुविदारक राजा बल-सम्पन्न होता है। ब्रह्म व क्षत्र मिलकर राष्ट्र के उत्थान का कारण बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—६, ८, १० **द्विपदाऽऽसुरीगायत्री,** ७, ९ **साम्न्युष्णिक्,** ११ **आसुरीबृहती**॥

पृथिवी+द्यौ (ज्ञान व बल)

इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः॥ ६॥

अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम्॥ ७॥
ऐनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति॥ ८॥
यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद॥ ९॥
ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान्भवति॥ १०॥
य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद॥ ११॥

१. **इयं वा उ पृथिवी**=यह पृथिवी ही निश्चय से **बृहस्पतिः**=बृहस्पति है, **द्यौः एव इन्द्रः**=द्युलोक ही इन्द्र है। जैसे पृथिवी व द्युलोक माता व पिता के रूप में होते हुए सब प्राणियों का धारण करते हैं (द्यौष्पिता, पृथिवीमाता), इसीप्रकार बृहस्पति व इन्द्र—ज्ञानी पुरोहित व राजा मिलकर राष्ट्र का धारण करते हैं। २. **अयं वा उ अग्निः**=निश्चय से यह अग्नि ही **ब्रह्म**=ज्ञान है और **असौ आदित्यः क्षत्रम्**=वह आदित्य क्षत्र=बल है। ज्ञान ही राष्ट्र को ले-चलनेवाला 'अग्रणी' है। जैसे उदय होता हुआ सूर्य कृमियों का संहार करता है, उसीप्रकार क्षत्र व बल राष्ट्रशत्रुओं का उपमर्दन करनेवाला आदित्य है। ३. **एनम्**=इस व्यक्ति को **ब्रह्म आगच्छति**=ज्ञान समन्तात् प्राप्त होता है। यह **ब्रह्मवर्चसी भवति**=ब्रह्मवर्चसवाला होता है, **यः**=जो **पृथिवीं बृहस्पतिम्**=पृथिवी को बृहस्पति के रूप में तथा **अग्निं ब्रह्म**=पृथिवी के मुख्य देव अग्नि को बृहस्पति के मुख्य गुण 'ब्रह्म' (ज्ञान) के रूप में **वेद**=जानता है, ४. **एनम्**=इस व्यक्ति को **इन्द्रियम् आगच्छति**=समन्तात् वीर्य (बल) प्राप्त होता है, तथा यह **इन्द्रवान् भवति**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाला होता है जो **आदित्यं क्षत्रम्**=सूर्य को बल के रूप में तथा **दिव्यम्**=सूर्याधिष्ठान द्युलोक को **इन्द्रम्**=बल के अधिष्ठानभूत राजा के रूप में देखता है।

भावार्थ—हम ज्ञान को ही माता के रूप में जानें 'ज्ञानाधिपति, बृहस्पति' पृथिवी के रूप में है। इसका गुण 'ज्ञान' अग्नि है। इसे प्राप्त करके हम ब्रह्मवर्चस्वी हों। बल को हम रक्षक पिता द्युलोक के रूप में देखें। द्युलोक इन्द्र है तो उसका मुख्य देव आदित्य बल है। इस तत्त्व को समझकर हम प्रशस्त, सबल इन्द्रियोंवाले बनें।

११. [एकादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१ दैवीपङ्क्तिः, २ द्विपदापूर्वात्रिष्टुबतिशक्वरी**॥

आतिथ्य

तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत्॥ १॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वा ऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य
तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते
वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति॥ २॥

१. **तत्**=इसलिए **यस्य गृहान्**=जिसके घरों को **एवम्**=(इण् गतौ)=गति के स्रोत अथवा सर्वगत=(सर्वव्यापक) परमात्मा को **विद्वान्**=जानता हुआ **व्रात्यः**=व्रतमय जीवनवाला **अतिथिः**=अतिथि **आगच्छेत्**=आये—प्राप्त हो तो **स्वयम्**=अपने-आप **एनम्**=**अभि उदेत्य**=इसकी ओर जाकर **ब्रूयात्**=कहे कि **व्रात्य**=हे व्रतिन्! **क्व अवात्सीः**=आप कहाँ रहे, **व्रात्य**=हे व्रतिन्! **उदकम्**=आपके लिए यह जल है। **व्रात्य**=हे व्रतिन्! मेरे गृह के ये भोजन **तर्पयन्तु**=आपको तृप्त व प्रीणित करनेवाले हों। हे **व्रात्य**=व्रतमय जीवनवाले विद्वन्! **यथा ते प्रियम्**=जैसे आपको

प्रिय हो **तथास्तु**=उसीप्रकार से व्यवस्था की जाए। **यथा ते वशः**=जैसे आपकी इच्छा (wish) हो, **तथास्तु**=वैसा ही हो। यथा **ते निकामः**=जैसे आपकी अभिलाषा हो, **तथास्तु इति**=वैसा ही किया जाए।

भावार्थ—घर पर आये हुए विद्वान् व्रात्य का सत्कारपूर्वक आतिथ्य करना आवश्यक है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**३-६ निचृदार्चीबृहती, ७ द्विपदाप्राजापत्याबृहती**॥

आतिथ्य से दीर्घजीवन

यदेनमाह व्रात्य क्वा ऽवात्सीरिति पथ एव तेन देवयानानव रुन्द्धे॥ ३॥
यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे॥ ४॥
यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते॥ ५॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्विति प्रियमेव तेनाव रुन्द्धे॥ ६॥
ऐनं प्रियं गच्छति प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद॥ ७॥

१. **यत्**=जो **एनम्**=इस विद्वान् व्रात्य को **आह**=यह कहता है कि **व्रात्य**=हे व्रतिन्! **क्व अवात्सीः इति**=आप कहाँ रहे? **तेन एव**=उस निवास के विषय में सत्कारपूर्वक किये गये प्रश्न के द्वारा ही **देवयानान् पथः अवरुन्द्धे**=देवयानमार्गों को अपने लिए सुरक्षित करता है, अर्थात् इस प्रकार आतिथ्य से उसकी प्रवृत्ति उत्तम होती है और वह देवयानमार्गों से चलनेवाला बनता है। २. **यत् एनम् आहः**=जो इसको कहता है कि **व्रात्य उदकम् इति**=हे व्रतिन्! आपके लिए यह जल है। **तेन एव**=इस जल के अर्पण से ही यह **आपः अवरुन्द्धे**=उत्तम कर्मों को अपने लिए सुरक्षित करता है, अर्थात् उस अतिथि की प्रेरणाओं से प्रेरित होकर उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होनेवाला होता है। **यत् एनम् आह**=जो इस विद्वान् व्रात्य से कहता है कि **व्रात्य तर्पयन्तु इति**=हे व्रतिन्! ये भोजन आपको तृप्त करनेवाले हों। **तेन एव**=इस सत्करण से ही **प्राणं वर्षीयांसं कुरुते**=जीवन को दीर्घ करता है। स्वयं आतिथ्यावशिष्ट भोजन करता हुआ दीर्घजीवनवाला बनता है। ३. **यत् एनम् आह**=जो इस व्रात्य से कहता है कि **व्रात्य**=हे व्रतिन्! **यथा ते प्रियम्**=जैसा आपको प्रिय लगे **तथा अस्तु इति**=वैसा ही हो। **तेन एव**=उस प्रिय प्रश्न से ही **प्रियं अवरुन्द्धे**=अपने लिए प्रिय को सुरक्षित करता है। **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार व्रात्य से प्रिय-विषयक प्रश्न करना जानता है, **एनम्**=इस प्रश्नकर्त्ता को **प्रियं आगच्छति**=प्रिय प्राप्त होता है और वह **प्रियः प्रियस्य भवति**=प्रियों का प्रिय बनता है।

भावार्थ—विद्वान् व्रात्यों के आतिथ्य से हम देवयानमार्ग पर चलनेवाले, उत्तम कर्मों में प्रवृत्त, दीर्घजीवनवाले व सर्वप्रिय बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**८ निचृदार्चीबृहती, ९ द्विपदाप्राजापत्याबृहती, १० भुरिगार्चीबृहती, ११ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप्**॥

वशः-निकामः

यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्विति वशमेव तेनाव रुन्द्धे॥ ८॥
ऐनं वशो गच्छति वशी वशिनां भवति य एवं वेद॥ ९॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति निकाममेव तेनाव रुन्द्धे॥ १०॥
ऐनं निकामो गच्छति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद॥ ११॥

१. **यत्**=जो **एनम्**=इसको **आह**=कहता है कि हे **व्रात्य**=व्रतिन्! **यथा ते वशः**=जैसी आपकी इच्छा हो, **तथा अस्तु इति**=वैसा ही हो। **तेन**=उस कथन से वह **वशमेव अवरुन्द्धे**=चाहने योग्य पदार्थों को अपने लिए सुरक्षित करता है। **यः एवं वेद**=जिस प्रकार व्रात्य का आतिथ्य करता हुआ 'यथा ते वशः तथा अस्तु' यह कहना जानता है, **एवम्**=इस आतिथ्यकर्त्ता को **वशः आगच्छति**=सब इष्ट-पदार्थ प्राप्त होते हैं और यह **वशिनां वशी भवति**=सर्वश्रेष्ठ वशी बनता है। २. **यत्**=जो **एनम् आह**=इसको कहता है कि हे **व्रात्य**=व्रतिन्! **यथा ते निकामः**=जैसी आपकी अभिलाषा हो **तथा अस्तु इति**=वैसा ही हो **तेन**=उस कथन से **निकामं एव अवरुन्द्धे**=सब अभिलषित पदार्थों को अपने लिए सुरक्षित करता है। **यः एवं वेद**=जो अतिथि के लिए ऐसा करना जानता है **एनं निकामः आगच्छति**=इसे अभिलषित पदार्थ सर्वतः प्राप्त होते हैं। **निकामस्य निकामे भवति**=अभिलषित पदार्थों की प्राप्ति (पूर्ति) में यह स्थित होता है, अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करता है।

भावार्थ—आतिथ्य हमारे सब मनोरथों को पूर्ण करता है और हमें सब अभिलषित पदार्थ प्राप्त होते हैं।

१२. [द्वादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१ त्रिपदागायत्री, २ प्राजापत्याबृहती, ३ भुरिक्प्राजापत्याऽनुष्टुप्**॥

देवयज्ञ, अतिथियज्ञ

तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्य उद्धृतेष्वग्निष्वधिश्रितेऽग्निहोत्रे ऽतिथिर्गृहानागच्छेत्॥ २॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्यातिसृज होष्यामीति॥ २॥
स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयात्॥ ३॥

१. **तत्**=इसलिए **यस्य गृहान्**=जिसके घर पर **एवं विद्वान् व्रात्यः**=(इण् गतौ) सर्वत्र गतिवाले प्रभु को जाननेवाला **व्रती उद्धृतेषु अग्निषु**=अग्नियों के गार्हपत्य से उठाकर आहवनी में आधान किये जाने पर **अग्निहोत्रे अधिश्रिते**=अग्निहोत्र के प्रारम्भ होने की तैयारी हो जाने पर **अतिथिः आगच्छेत्**=अतिथि के रूप में प्राप्त हो तो **स्वयम्**=अपने-आप **एनं अभि उदेत्य**=इसके प्रति प्राप्त होकर कहे कि हे **व्रात्य**=व्रतिन्! **अतिसृज**=आप मुझे अनुज्ञा दीजिए जिससे **होष्यामि इति**=मैं यज्ञ करूँ। २. इसप्रकार अनुज्ञा माँगने पर **सः च अतिसृजेत्**=यदि वह अनुज्ञया दे दे तो **जुहुयात्**=अग्निहोत्र करे, परन्तु यदि **न च अतिसृजेत्**=यदि वह अनुज्ञा न दे तो **न जुहुयात्**=अग्निहोत्र न करे।

भावार्थ—अग्निहोत्र प्रारम्भ होने के अवसर पर अकस्मात् अतिथि आ जाए तो गृहस्थ व्रात्य का आदरपूर्वक स्वागत करे। उससे अनुज्ञया लेकर ही अग्निहोत्र करे। जबतक अतिथि अनुज्ञया न दे तब अग्निहोत्र स्थगित रक्खे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**४ भुरिक्प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ५-६ आसुरीगायत्री, ७ त्रिपदा प्राजापत्यात्रिष्टुप्**॥

अतिथि सत्कार व गृहरक्षण

स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति॥ ४॥
प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम्॥ ५॥

न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति॥ ६॥

पर्यस्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति॥ ७॥

१. **सः**=वह गृहस्थ **यः**=जो **एवम्**=इस गति के स्रोत प्रभु को **विदुषा**=जाननेवाले **व्रात्येन**=व्रतीपुरुष से **अतिसृष्टः**=अनुज्ञा दिया हुआ **जुहोति**=अग्निहोत्र करता है, **प्र पितृयाणं पन्थां जानाति**=पितृयाण मार्ग को जानता है और **देवयानं प्र (जानाति)**=देवयानमार्ग को भी जानता है। बड़ों के आदेश में चलना ही पितृयाणमार्ग है और दिव्यगुणों को प्राप्त करानेवाला मार्ग ही देवयान है। घर पर आये हुए मान्य अतिथि से अनुज्ञा लेकर अग्निहोत्र आदि में प्रवृत्त होने से घर में पितृयाण व देवयान मार्गों की नींव पड़ती है। २. **यः**=जो **एवं विदुषा**=गति के स्रोत प्रभु के ज्ञाता व्रात्य से **अतिसृष्टः जुहोति**=अनुज्ञा दिया हुआ अग्निहोत्र करता है, वह **देवेषु**=देवों के विषय में **न आवृश्चते**=अपने कर्त्तव्य को क्षीण नहीं करता, अर्थात् उनके विषय में अपने कर्त्तव्य का पालन करता है **अस्य हुतं भवति**=इसका अग्निहोत्र ठीक सम्पन्न होता है तथा **अस्मिन् लोके**=इस जगत् में **अस्य आयतनम्**=इसका घर **परिशिष्यते**=विनाश से बचा रहता है, अर्थात् इस घर में विलास आदि की वृत्तियाँ उत्पन्न होकर इसके विनाश का कारण नहीं बनतीं।

भावार्थ—विद्वान् व्रती अतिथि से अनुज्ञा लेकर ही अग्निहोत्र आदि में प्रवृत्त होने से उस अतिथि का मान बना रहता है और गृहस्थ के घर में उत्तम प्रथाएँ बनी रहती हैं जो घर को विनष्ट नहीं होने देतीं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**८ विराड्गायत्री, ९-१० आसुरीगायत्री, ११ त्रिपदाप्राजापात्यात्रिष्टुप्**॥

बड़ों का निरादर व गृहविनाश

अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति॥ ८॥

न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम्॥ ९॥

आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति॥ १०॥

नास्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा

व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति॥ ११॥

१. **अथ**=अब **यः**=जो **एवं विदुषा**=इसप्रकार ज्ञानी **व्रात्येन**=व्रती से **अनतिसृष्टः**=बिना अनुज्ञा पाये ही, उसके आतिथ्य को उपेक्षित करके **जुहोति**=यज्ञ में प्रवृत्त होता है, वह **पितृयाणं पन्थां न प्रजानाति**=पितृयाणमार्ग के तत्त्व को नहीं जानता **न देवयानं प्र (जानाति)**=न ही देवयानमार्ग के रहस्य को जानता है। २. **यः**=जो **एवं विदुषा व्रात्येन**=इसप्रकार ज्ञानीव्रती से **अनतिसृष्टः**=बिना अनुज्ञा प्राप्त किये हुए ही **जुहोति**=अग्निहोत्र में प्रवृत्त हो जाता है, वह **देवेषु**=देवों के विषय में **आवृश्चते**=अपने कर्त्तव्य को छिन्न करता है। **अहुतम् अस्य भवति**=इसका अग्निहोत्र किया न किया बराबर हो जाता है और **अस्मिन् लोके**=इस संसार में **अस्य आयतनम्**=इसका घर उत्तम परिपाटियों के न रहने से **नशिष्यते**=विनष्ट हो जाता है।

भावार्थ—अतिथि की उपेक्षा करके यज्ञ में लगे रहना भी उचित नहीं, इससे घर में बड़ों के आदर की भावना का विलोप होकर घर विनाश की ओर चला जाता है।

१३. [त्रयोदशं सूक्तमं]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१ साम्न्युष्णिक्, २, ६ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ३, ५, ७ आसुरीगायत्री, ४, ८ साम्नीबृहती, ९ द्विपदानिचृद्गायत्री, १० द्विपदाविराड्गायत्री**॥

आतिथ्य से पुण्यलोकों की प्राप्ति

तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति॥ १॥
ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे॥ २॥
तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति॥ ३॥
ये ३ न्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे॥ ४॥
तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति॥ ५॥
ये दिवि पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे॥ ६॥
तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्यश्चतुर्थीं रात्रिमतिथिर्गृहे वसति॥ ७॥
ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे॥ ८॥
तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति॥ ९॥
य एवापरिमिताः पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे॥ १०॥

१. **तत्**=इसलिए **यस्य गृहे**=जिसके घर में **एवं विद्वान्**=सर्वत्र गतिवाले प्रभु को जानता हुआ **व्रात्यः**=व्रतीपुरुष **एकाम् रात्रिम्**=एक रात **अतिथिः वसति**=अतिथि बनकर रहता है तो **तेन**=उस अतिथि से वह **गृहस्थ यः**=जो **पृथिव्याम्**=पृथिवी में **पुण्याः लोकाः**=पुण्यलोक हैं **तान् एव**=उनको ही **अवरुन्द्धे**=अपने लिए सुरक्षित करता है। २. **तत्**=इसलिए **यस्य गृहे**=जिसके घर में **एवं विद्वान् व्रात्यः**=सर्वत्र गतिवाले प्रभु को जाननेवाला व्रतीपुरुष **द्वितीयां रात्रिं अतिथिः वसति**=दूसरे रात भी अतिथिरूपेण रहता है तो **तेन**=उस आतिथ्य कर्म से ये **अन्तरिक्षे पुण्याः लोकाः**=जो अन्तरिक्ष में पुण्यलोक हैं **तान् एव**=उनको निश्चय ही **अवरुन्द्धे**=अपने लिए सुरक्षित करता है। ३. **तत्**=इसलिए **यस्य गृहे**=जिसके घर में **एवं विद्वान् व्रात्यः**=उस गति के स्रोत (इ गतौ) प्रभु को जाननेवाला व्रतीपुरुष **तृतीयां रात्रिम्**=तीसरी रात भी **अतिथिः वसति**=अतिथिरूप में रहता है तो **तेन**=उस आतिथ्य कर्म से **ये दिवि पुण्याः लोकाः**=जो द्युलोक में पुण्यलोक हैं **तान् एव अवरुन्द्धे**=उनको अपने लिए निश्चय से सुरक्षित कर पाता है। ४. **तत्**=इसलिए **यस्य गृहे**=जिसके घर में **एवं विद्वान् व्रात्यः**=गति के स्रोत प्रभु को जाननेवाला व्रतीपुरुष **चतुर्थीं रात्रिं अतिथिः वसति**=चौथी रात भी अतिथिरूपेण रहता है तो **तेन**=उस आतिथ्य कर्म से **ये पुण्यानां पुण्याः लोकाः**=जो पुण्यों के भी पुण्यलोक हैं—अतिशयेन पुण्यलोक हैं, **तान् एव अवरुन्द्धे**=उन्हें अपने लिए सुरक्षित कर लेता है। ५. **तत्**=इसलिए **यस्य गृहे**=जिसके घर में **एवं विद्वान् व्रात्यः**=गति के स्रोत प्रभु को जाननेवाला व्रती विद्वान् **अपरमिताः रात्रीः अतिथिः वसति**=न सीमित—बहुत रात्रियों तक अतिथिरूपेण रहता है तो **तेन**=उस आतिथ्य कर्म से यह गृहस्थ **ये एव अपरिमिताः पुण्याः लोकाः**=जो भी अपरिमित पुण्यलोक हैं **तान् अवरुन्द्धे**=उन सबको अपने लिए सुरक्षित कर लेता है।

भावार्थ—विद्वान् व्रात्य के आतिथ्य से गृहस्थ पुण्यलोकों को प्राप्त करता है। उन विद्वान् व्रात्यों की प्रेरणाएँ इन्हें पुण्य-मार्ग पर ले-चलती हुई पुण्यलोकों को प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**११ प्राजापत्यापङ्क्तिः, १२ आसुरीजगती, १३ सतःपङ्क्तिः, १४ अक्षरपङ्क्तिः**॥

अव्रात्य अतिथि का भी अनिरादर

अथ॒ यस्याव्रा॑त्यो व्रात्यब्रु॒वो नाम॑बिभ्र॒त्यति॑थिर्गृ॒हान॒गच्छेत्॥ ११॥
कर्षे॑दे॒नं॒ न चै॒नं॒ कर्षे॑त्॥ १२॥
अ॒स्यै दे॒वता॑या उद॒कं या॑चामी॒मां दे॒वता॑ं वासय इ॒माम॒मां
दे॒वता॒ं परि॑ वेवे॒ष्मीत्ये॒नं॒ परि॑ वेविष्यात्॥ १३॥
तस्या॑मे॒वास्य॒ तद्दे॒वता॑यां हु॒तं भ॑वति॒ य ए॒वं वेद॑॥ १४॥

१. **अथ**=अब **यस्य गृहान्**=जिसके घर को **अव्रात्यः**=एक अव्रती **व्रात्यब्रुवः**=अपने को व्रती कहनेवाला, **नाम बिभ्रती**=केवल अतिथि के नाम को धारण करनेवाला **अतिथिः आगच्छेत्**=अतिथि आ जाए तो क्या **एनं कर्षेत्**=इसे खदेड़ दें—क्या इसका निरादर करके भगा दें? **न च एनं कर्षेत्**=नहीं, निश्चय से उसे निरादरित न करें, २. अपितु अतिथि की भावना से ही इसप्रकार अपनी पत्नी से कहे कि **अस्यै देवतायै उदकं याचामि**=इस देवता के लिए उदक (पानी) माँगता हूँ। **इमां देवतां वासये**=इस देवता को निवास के लिए स्थान देता हूँ। **इमाम्**=इस और **इमां देवताम्**=इस देवता को ही **परिवेवेष्यात्**=भोजन परोसे। ऐसा करने पर **अस्यै**=इस गृहस्थ का **तत्**=वह भोजन परिवेषणादि कर्म **तस्यां एव देवतायाम्**=उस अतिथिदेव में ही **हुतं भवति**=दिया हुआ होता है। **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार अतिथि के महत्त्व को समझता है, वह इस व्रात्यब्रुव को भी भोजन परोस ही देता है और अतिथियज्ञ को विच्छिन्न नहीं होने देता।

भावार्थ—अव्रती भी अतिथिरूपेण उपस्थित हो जाए तो उसका निरादर न करके उसे भी खानपान से तृप्त ही करें। अतिथियज्ञ को विच्छिन्न न होने दे।

१४. [चतुदर्शं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१ त्रिपदाऽनुष्टुप्, २ आसुरीगायत्री**॥

मारुतं शर्धः+अन्नादं मनः

स यत्प्राची॑ं दिश॒मनु॒ व्यच॑ल॒न्मारु॑तं॒ शर्धो॑ भू॒त्वानु॒व्य॑ ऽचल॒न्मनो॑ ऽन्ना॒दं कृ॒त्वा॥ १॥
मन॑सान्ना॒देनान्न॑मत्ति॒ य ए॒वं वेद॑॥ २॥

१. **सः**=वह व्रात्य **यत्**=जब **प्राचीं दिशं अनुव्यचलत्**=प्रगति (प्र अञ्च) की दिशा में क्रमशः आगे बढ़ा तो **मारुतं शर्धः**=प्राण-सम्बन्धी बल का पुञ्ज **भूत्वा**=होकर, अर्थात् प्राणसाधना द्वारा सबल बनकर **अनुव्यचलत्**=क्रमशः आगे बढ़ा। २. इसके साथ यह **मनः अन्नादं कृत्वा**=मन को अन्नाद बनाकर आगे बढ़ा। मन के दृष्टिकोण से यह भोजन खानेवाला हुआ। **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार समझ लेता है कि मन की पवित्रता का निर्भर अन्न पर ही है, (जैसा अन्न वैसा मन, you are, what you eat, आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः) वह **अन्नादेन**=अन्न का ग्रहण करनेवाले **मनसा अन्नं अत्ति**=मन से अन्न खाता है। मन की अपवित्रता के कारणभूत अन्न को नहीं खाता।

भावार्थ—हम प्राणसाधना द्वारा प्राणशक्ति का वर्धन करें और मन की पवित्रता के दृष्टिकोण से सात्त्विक भोजन ही खाएँ, यही प्रगति की दिशा में आगे बढ़ने का उपाय है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**३ परउष्णिक्, ४ आसुरीगायत्री**॥

इन्द्र+अन्नादं बलं

स यद्दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्य ङ चलद् बलमन्नादं कृत्वा॥ ३॥
बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद॥ ४॥

१. **सः**=वह **यत्**=जब **दक्षिणां दिशं अनुव्यचलत्**=दक्षिणा (नैपुण्य) की दिशा की ओर चला तो **इन्द्रः भूत्वा अनुव्यचलत्**=जितेन्द्रिय बनकर चला। जितेन्द्रिय बनकर ही हम दाक्षिण्य प्राप्त कर सकते हैं। २. दाक्षिण्य प्राप्त करनेवाला **यः**=जो भी व्यक्ति **एवं वेद**=इस तत्त्व को समझ लेता है कि जितेन्द्रियता से दाक्षिण्य प्राप्त किया जा सकता है, वह जितेन्द्रिय बनकर **बलं आन्नदं कृत्वा**=बल को अन्न खानेवाला करके आगे बढ़ता है। **अन्नादेन बलेन अन्नं अत्ति**=अन्न को खानेवाले बल से अन्न को खाता है। उसी अन्न को खाता है जो बल को बढ़ानेवाला है। ये किसी भी स्वाद को भोजन का मापक नहीं बनाता।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय बनकर दाक्षिण्य प्राप्त करें। बल के वर्धन के दृष्टिकोण से ही भोजन करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्, ६ आसुरीगायत्री**॥

वरुण राजा+अन्नादीः अपाः

स यत्प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद्वरुणो राजा भूत्वानुव्य ङ चलदपो ङन्नादीः कृत्वा॥ ५॥
अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद॥ ६॥

१. **सः**=वह व्रात्य **यत्**=जब **प्रतीचीं दिशं अनुव्यचलत्**=प्रत्याहार—इन्द्रियों को विषयों से व्यावृत्त करने की दिशा की ओर चला तो **वरुणः**=सब व्यसनों का निराकरण करनेवाला वह **राजा**=दीप्तजीवनवाला **भूत्वा**=होकर **अनुव्यचलत्**=अनुक्रमेण गतिवाला हुआ। २. **यः**=जो **एवं वेद**=इस तत्त्व को समझ लेता है कि निरव्यसन व दीप्तजीवनवाला बनने के लिए 'प्रत्याहार' आवश्यक है, वह **आपः**=रेतःकणों को **अन्नादीः कृत्वा**=अन्न खानेवाला बनाकर प्रत्याहार को सिद्ध करता है। यह **अन्नादीभिः अद्भिः अत्ति**=अन्न को खानेवाले रेतःकणों से ही अन्न को खाता है। उन्हीं सौम्य अन्नों का सेवन करता है जो रेतःकणों के रक्षण के लिए अनुकूलतावाले हों, अर्थात् यह उत्तेजक, राजस् भोजन से बचता है, राजस् भोजनों का सेवन नहीं करता।

भावार्थ—हम निर्व्यसन व दीप्तजीवनवाले बनकर इन्द्रियों को विषयों से व्यावृत्त करें। उन्हीं सात्त्विक भोजनों का सेवण करें जो रेतःकणों के रक्षण के लिए हितकर हों, न राजसों, न तामसों का।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**७ प्रस्तारपङ्क्तिः, ८ आसुरीगायत्री**॥

सोमराजा+अन्नादी ज्ञानयज्ञाहुति

स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत्सोमो राजा
भूत्वानुव्य ङ चलत्सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा॥ ७॥
आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद॥ ८॥

१. **सः**=वह व्रात्य **यत्**=जब **उदीचीम्**=(उद् अञ्च) उन्नति की दिशा की ओर **अनुव्यचलत्**=चला तो **सोमः**=सौम्य, शान्त व **राजा**=दीप्तजीवनवाला **भूत्वा**=बनकर **अनुव्यचलत्**=क्रमशः आगे बढ़ा। सौम्यता व ज्ञानदीप्त जीवन में ही उन्नति सम्भव है। २. **यः एवं वेद**=जो

इस तत्त्व को समझ लेता है कि उन्नति के लिए सौम्य, दीप्त जीवन की आवश्यकता है वह **सप्तर्षिभिः**='दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँखें व मुख' रूप सप्तर्षियों से **हुते**=किये जानेवाले ज्ञानयज्ञ में **आहुतिम्**=ज्ञेय विषयों की आहुति को **अन्नादीं कृत्वा**=अन्न खानेवाली बनाकर आगे बढ़ता है। इस **अन्नाद्या आहुत्या**=अन्न को खानेवाली, विषयों की ज्ञानयज्ञ में दी जानेवाली आहुति से ही यह **अन्नं अत्ति**=अन्न को खाता है। उसी अन्न को खाता है जो ज्ञानेन्द्रियों को अपने कार्य में सक्षम करे।

भावार्थ—हम सौम्य व ज्ञानदीप्त जीवनवाले बनते हुए जीवन में ऊर्ध्वगतिवाले हों। उन्हीं अन्नों का सेवन करें जो ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञानप्राप्ति के कार्य में सक्षम करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**९ पुरउष्णिक्, १० आसुरीगायत्री**॥

विष्णु+अन्नादी विराट्

स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद्विष्णुर्भूत्वानुव्यचलद् विराजमन्नादीं कृत्वा॥ ९॥
विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद॥ १०॥

१. **सः**=वह व्रात्य **यत्**=जब **ध्रुवां दिशं अनुव्यचलत्**=ध्रुवता—स्थिरता की दिशा की ओर चला तो **विष्णुः**=व्यापक उन्नतिवाला—'शरीर, मन व मस्तिष्क' तीनों की उन्नतिवाला—'स्वस्थ शरीर, पवित्र मन व दीप्त मस्तिष्क' वाला **भूत्वा अनुव्यचलत्**=होकर अनुकूलता से गतिवाला हुआ। त्रिविध उन्नति में ही उन्नति की स्थिरता है। २. **यः एवं वेद**=जो त्रिविध उन्नति में ही उन्नति की स्थिरता के तत्त्व को समझ लेता है, वह **विराजम्**=इस विशिष्ट दीप्ति को ही **अन्नादीं कृत्वा**=अन्न खानेवाला बनकर चलता है। उसी अन्न को खाता है जो उसे विराट्—विशिष्ट दीप्तिवाला बनाए। **अन्नाद्या**=अन्न को खानेवाला **विराजा**=विशिष्ट दीप्ति से ही वह **अन्नं अत्ति**=अन्न खाता है—उसी अन्न को खाता है, जो उसे विशिष्ट दीप्तिवाला बनाता है।

भावार्थ—उन्नति की स्थिरता इसी में है कि हम शरीर, मन व मस्तिष्क तीनों को उन्नत करें, तभी हम 'विराट्' बनेंगे। विराट् बनने के दृष्टिकोण से ही अन्न खाना चाहिए—वह अन्न जो हमें 'शरीर में स्वस्थ, मन में पवित्र तथा मस्तिष्क में दीप्त' बनाये।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**११ स्वराड्गायत्री, १२ भुरिक्प्राजापत्याऽनुष्टुप्**॥

रुद्र+अन्नादी ओषधी

स यत्पशूननु व्यचलद्रुद्रो भूत्वानुव्य ∫ चलदोषधीरन्नादीः कृत्वा॥ ११॥
ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद॥ १२॥

१. **सः**=वह **यत्**=जब **पशुं अनुव्यचलत्**=पशुओं के अनुकूल गतिवाला हुआ—पशुओं को किसी प्रकार की हानि न पहुँचानेवाला बनकर चला तब **रुद्रः भूत्वा अनुव्यचलत्**=(रुत् द्र) रोगों को दूर भगानेवाला बनकर चला। किसी को हानि न पहुँचाना ही अपने को हानि से बचाने का उपाय है। **यः एवं वेद**=जो इस तत्त्व को समझ लेता है कि रोगों से बचने के लिए आवश्यक है कि हम किन्हीं भी पशुओं को हानि न पहुँचाएँ, वह **ओषधीः अन्नादीः कृत्वा**=ओषधियों को ही अन्नभक्षण करनेवाला बनाकर चलता है। दोष-दहन करनेवाले अन्नों का ही सेवन करता है (उष दाहे+धी) **अन्नादीभिः ओषधीभिः**=अन्नों को खानेवाली दोषदग्धकरी स्थिति से ही वह अन्न खाता है।

भावार्थ—हम नीरोग बनने के लिए किसी भी पशु के अहिंसन का व्रत लें। उन्हीं भोजनों

को खाएँ जो शरीर के दोषों का दहन करनेवाले हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१३ आर्चीपङ्क्तिः, १४ भुरिक्प्राजापत्याऽनुष्टुप्**॥

यमः राजा+अन्नाद स्वधाकार

स यत्पितॄननु व्यचलद्यमो राजा भूत्वानुव्यचलत्स्वधाकारमन्नादं कृत्वा॥ १३॥ स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद॥ १४॥

१. **सः**=वह **यत्**=जब **पितॄन् अनुव्यचलत्**=पितरों को लक्ष्य करके गतिवाला हुआ तो **यमः राजा भूत्वा अनुव्यचलत्**=संयत व दीप्तजीवनवाला होकर चला। संयत व दीप्ति जीवनवाला बनकर ही तो वह पितरों के समान बन सकेगा। २. **यः एवं वेद**=जो पितरकोटि में प्रवेश के लिए संयम व ज्ञानदीप्ति के महत्त्व को समझता है, वह **स्वधाकारं अन्नादं कृत्वा**=स्वधाकार को अन्नाद बनाकर चलता है, अर्थात् पहले पितरों (बड़ों) को खिलाकर पीछे स्वयं खाता है (पितृभ्यः स्वधा)। यह **अन्नादेन स्वधाकारेण अन्नं अत्ति**=अन्न खानेवाले स्वधाकार से ही अन्न को खाता है, अर्थात् सदा पितृयज्ञ करके अवशिष्ट को ही खानेवाला बनता है।

भावार्थ—पितृयाणमार्ग का सफलता से आक्रमण करने के लिए आवश्यक है कि हम संयत व ज्ञानदीप्तजीवनवाले बनें और पितरों को खिलाकर पितृयज्ञावशिष्ट को ही खाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१५ आर्चीपङ्क्तिः, १६ भुरिक्प्राजापत्याऽनुष्टुप्**॥

अग्नि+स्वाहाकार अन्नाद

स यन्मनुष्या३ ननु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्यचलत्स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा॥ १५॥ स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद॥ १६॥

१. **सः**=वह **यत्**=जब **मनुष्यान् अनुव्यचलत्**=मनुष्यों के अनुकूल गतिवाला हुआ, अर्थात् जब उसने एक उत्तम मानव बनने का निश्चय किया तब **अग्निः भूत्वा अनुव्यचलत्**=अग्नि बनकर चला—निरन्तर आगे बढ़नेवाला प्रकाशमय उत्साहवाला (अग्नि=उत्साह)। २. **यः एवं वेद**=जिसने यह समझ लिया कि उत्तम सन्तान वही है जो 'आगे बढ़नेवाला, प्रकाशमय व उत्साहवाला' है, तो वह **स्वाहाकारम् अन्नादं कृत्वा**=स्वाहाकार को अन्नाद बनाकर चला। यज्ञ करके यज्ञशेष को खाने की वृत्तिवाला बना। यह व्यक्ति **अन्नादेन स्वाहाकारेण अन्नं अत्ति**=अन्न को खानेवाले स्वाहाकार से ही अन्न को खाता है। पहले 'अग्नये स्वाहा' और पीछे 'उदराय'। यह उसका जीवन-सूत्र बनता है।

भावार्थ—उत्तम मानव वही है जो 'अग्रगतिवाला, प्रकाश व उत्साहवाला है'। यह सदा यज्ञशेष अमृत का सेवन करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१७ आर्चीत्रिष्टुप्, १८ भुरिक्प्राजापत्याऽनुष्टुप्**॥

बृहस्पति+वषट्कार अन्नाद

स यदूर्ध्वां दिशमनु व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वानुव्यचलद्वषट्कारमन्नादं कृत्वा॥ १७॥ वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद॥ १८॥

१. **सः**=वह **यत्**=जब **ऊर्ध्वाम्**=उन्नति की सर्वोपरि **दिशं अनुव्यचलत्**=दिशा की ओर चला, तब **बृहस्पतिः भूत्वा अनुव्यचलत्**=ब्रह्मणस्पति—ज्ञान का स्वामी बनकर चला। २. **यः**

एवं वेद=जो इस बात को समझ लेता है कि उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिए बृहस्पति बनना आवश्यक है, वह **वषट्कारम्**=(वश् to kill) वासना-विनाश के कार्य को **अन्नादं कृत्वा**=अन्न का खानेवाला करके चलता है, अर्थात् उन्हीं भोजनों को करता है जो वासनाओं को उत्तेजित करनेवाले न हों। यह **वषट्कारेण**=वषट्काररूपी **अन्नादेन**=अन्न खानेवाले से **अन्नं अत्ति**=अन्न को खाता है, अर्थात् भोजन का उद्देश्य वासनाशून्य शक्ति को जन्म देना ही मानता है।

भावार्थ—उन्नति के शिखर पर ज्ञान के द्वारा ही पहुँचा जा सकता है। ज्ञान के मार्ग में वासनाएँ ही विघातक हैं, अतः भोजन वही ठीक है जो वासनाशून्य शक्ति को जन्म दे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१९ भुरिङ्नाम्नीगायत्री, २० आसुरीगायत्री**॥

ईशान+अन्नादमन्यु

स यद्देवाननु व्यचलदीशानो भूत्वानुव्य चलन्मन्युमन्नादं कृत्वा॥ १९॥
मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद॥ २०॥

१. **सः**=वह व्रात्य **यत्**=जब **देवान् अनुव्यचलत्**=दिव्यगुणों की प्राप्ति को लक्ष्य करके चला तब **ईशानः भूत्वा अनुव्यचलत्**=ईशान—इन्द्रियों का स्वामी बनकर गतिवाला हुआ। बिना ईशान बने दिव्यगुणों का सम्भव कहाँ? जितेन्द्रियता ही उस वृत्त का केन्द्र है, जिसकी परिधि पर सब दिव्यगुणों की स्थिति है। **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार जितेन्द्रियता व सद्गुणों के कारणकार्य-भाव को समझ लेता है, वह **मन्युम्**=(A sacrifice, spirit, couarge) त्याग व उत्साह को **आनन्दं कृत्वा**=आनन्द बनाकर चलता है। **मन्युना अन्नादेन अन्नं अत्ति**=त्याग व उत्साहरूप अन्नादि से ही अन्न को खाता है। उसी सात्त्विक भोजन का ग्रहण करता है जो उसके मन में त्यागवृत्ति व उत्साह को जन्म दे।

भावार्थ—जितेन्द्रियता ही सब दिव्यगुणों का मूल है। जितेन्द्रियता के लिए हम उन्हीं भोजनों को करें जो हमारे हृदयों में उत्साह व त्यागवृत्ति का संचार करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**२१ प्राजापत्यात्रिष्टुप्, २२ आसुरीगायत्री**॥

प्रजापति+अन्नाद प्राण

स यत्प्रजा अनु व्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वानुव्य चलत्प्राणमन्नादं कृत्वा॥ २१॥
प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद॥ २२॥

१. **सः**=वह **यत्**=जब **प्रजाः अनुव्यचलत्**=प्रजाओं के हित का लक्ष्य करके गतिवाला हुआ तब **प्रजापतिः भूत्वा अनुव्यचलत्**=प्रजाओं का रक्षक बनकर अनुकूल गतिवाला हुआ। २. इस समय यह **प्राणम् अन्नादं कृत्वा**=प्राण को अन्न खानेवाला करके चला, अर्थात् केवल प्राण-धारण के उद्देश्य से ही उसका भोजन होता था। **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार समझ लेता है कि वह खाने के लिए नहीं आया, अपितु जीवन के लिए खाना है, वह **अन्नादेन प्राणेन अन्नम् अत्ति**=अन्न को खानेवाले प्राण से अन्न को खाता है—प्राणधारण के लिए ही उसका भोजन होता है।

भावार्थ—हम प्राणधारण के लिए—जीवन की रक्षा के लिए भोजन करें। जीवन को प्रजाहित में तत्पर करें—प्राजापत्ययज्ञ में जीवन की आहुति दें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—२३ **आर्चीत्रिष्टुप्**, २४ **आसुरीगायत्री**॥

परमेष्ठी+अन्नाद ब्रह्म

स यत्सर्वान्नन्तर्देशाननु व्यचलत्परमेष्ठी भूत्वानुव्य ऽचलद् ब्रह्मान्नादं कृत्वा॥ २३॥
ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद॥ २४॥

१. **सः**=वह **यत्**=जब **सर्वान् अन्तर्देशान्**=सब अन्तर्देशों में—प्रजाओं के निवासस्थानों में **अनुव्यचलत्**=अनुकूलता से गतिवाला हुआ तो **परमेष्ठी भूत्वा अनुव्यचलत्**=परम स्थान में स्थित होता हुआ गतिवाला हुआ। प्रजाहित के लिए सब अन्तर्देशों में भ्रमण ही मानवजीवन का चरमोत्कर्ष है। इस समय यह **ब्रह्म अन्नादं कृत्वा**=ब्रह्म को ही अन्नाद बनाकर चला। भोजन को केवल इसलिए खाने लगा कि स्वस्थ शरीर में मैं ब्रह्मदर्शन कर पाऊँगा। २. **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार प्रजाहित के लिए सब अन्तर्देशों में विचरण को आवश्यक समझ लेता है, वह परमेष्ठी (व्रात्य) **ब्रह्मणा अन्नादेन अन्नम् अत्ति**=अन्न को खानेवाले ब्रह्म से ही अन्न को खाता है—भोजन का उद्देश्य ही ब्रह्म-प्राप्ति ही जानता है। जो भोजन ब्रह्म-प्राप्ति के मार्ग पर चलने में सहायक है, उन्हीं को करता है।

भावार्थ—प्रजाहित के लिए सब अन्तर्देशों में विचरते हुए हम 'परमेष्ठी' बनें। उन्हीं भोजनों को करें जो हमारी प्रवृत्तियों को ब्रह्मप्रवण करनेवाले हों।

१५. [पञ्चदशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—१ **दैवीपङ्क्तिः**,
२ **आसुरीबृहती (१-२ तस्य व्रात्यस्येत्यस्योक्तम्)**॥

सात 'प्राण, अपान, व्यान'

तस्य व्रात्यस्य॥ १॥

सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः॥ २॥

१. **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रतमय जीवनवाले विद्वान् के **सप्त प्राण**=सात प्राण हैं। **सप्त अपानाः**=सात अपान है और **सप्त व्यानाः**=सात व्यान हैं। २. शरीर में शक्ति का संचार करनेवाले तत्त्व प्राण हैं। शरीर में दोषों को दूर करनेवाले तत्त्व अपान हैं तथा शरीर की सब क्रियाओं को शासित करनेवाली शक्तियाँ व्यान हैं।

भावार्थ—व्रात्य 'सात प्राणों, सात अपानों तथा सात व्यानों' का स्वामी होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—३ **प्राजापत्याऽनुष्टुप्**,
४ **भुरिक्प्राजापत्याऽनुष्टुप्**, ५ **द्विपदासाम्नीबृहती (३-५ तस्य व्रात्यस्येत्यस्योक्तम्)**॥

अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा

तस्य व्रात्यस्य। यो ऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः॥ ३॥
तस्य व्रात्यस्य। यो ऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः॥ ४॥
तस्य व्रात्यस्य। यो ऽस्य तृतीयः प्राणोऽ३भ्यू ढो नामासौ स चन्द्रमाः॥ ५॥

१. **तस्य व्रातस्य**=उस व्रात्य का, **यः अस्य**=जो इसका **प्रथमः प्राणः**=पहला प्राण है, **ऊर्ध्वः नाम**=वह ऊर्ध्व नामवाला है, **अयं सः अग्निः**=यह वह 'अग्नि' है। **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः अस्य**=जो इसका **द्वितीयः प्राणः**=द्वितीय प्राण है, वह **प्रौढः नाम**=प्रौढ नामवाला, **असौ सः आदित्यः**=वह वही आदित्य है। **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः अस्य तृतीयः**

प्राणः=जो इसका तीसरा प्राण है **अभ्यूढः नाम**=अभ्यूढ नामवाला है। **असौ सः चन्द्रमाः**=वह वही चन्द्रमा है। २. प्रथम प्राण 'ऊर्ध्व' व 'अग्नि' है। 'ऊर्ध्व' का अभिप्रायः है शरीर में रेतःकणों की ऊर्ध्वगति करनेवाला। प्राणसाधना के द्वारा शरीर के रेतःकण ऊर्ध्वगतिवाले होते ही हैं। यह 'अग्नि' है—शरीर में उचित शक्ति की अग्नि का पोषण करता है। दूसरा प्राण 'प्रौढ' (प्र+ऊढ)=प्रकृष्ट वहनवाला है। यह हमें उन्नति की दिशा में ले-चलता है। प्राणसाधना द्वारा बुद्धि का विकास होकर हमारा ज्ञान बढ़ता है। यह ज्ञान ही हमें उन्नत करनेवाला होता है, अतः इस प्राण को 'आदित्य' कहा गया है—सब ज्ञानों व गुणों का आदान करनेवाला। अब तृतीय प्राण 'अभि ऊढ' है। यह हमें प्रभु की ओर—आत्मतत्त्व की ओर ले-चलता है। प्राणायाम द्वारा ही विवेकख्याति होकर आत्मदर्शन होता है। यह प्राण 'चन्द्रमा' है—(चदि आह्लादे) अद्भुत आह्लाद का साधन बनता है। आत्मदर्शन का आनन्द वाग्विषय न होकर अन्तःकरणग्राह्य ही है।

भावार्थ—व्रात्य प्राणसाधना करता हुआ अपने अन्दर शक्ति को 'अग्नि' को, ज्ञान व गुणों के आदानरूप 'आदित्य' को तथा आत्मदर्शन के आनन्द रूप 'चन्द्रमा' को धारण करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—६ **द्विपदासाम्नीबृहती, ७-८ भुरिक्प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ९ विराड्गायत्री (६-९ तस्य व्रात्यस्येत्यस्योक्तम्)**

पवमानः, आपः, पशवः, प्रजाः

तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य चतु॒र्थः प्रा॒णो वि॒भूर्ना॑मा॒यं स पव॑मानः॥ ६॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य पञ्च॒मः प्रा॒णो योनि॒र्नाम॒ ता इ॒मा आपः॥ ७॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य ष॒ष्ठः प्रा॒णः प्रि॒यो नाम॒ त इ॒मे प॒शवः॥ ८॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य स॒प्त॒मः प्रा॒णोऽप॑रिमितो॒ नाम॒ ता इ॒माः प्र॒जाः॥ ९॥

१. **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का, **यः**=जो **अस्य**=इसका **चतुर्थः प्राणः**=चतुर्थ प्राण है, वह **विभूः नाम**=विभू नामवाला है—वैभवसम्पन्न-शक्तिशाली। **अयं सः**=यह वह **पवमानः**=वायु है—जीवन को गति देने के द्वारा पवित्र रखनेवाला है। पवित्रता के साथ शक्ति भी देने के कारण यह 'विभू' है। २. **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः अस्य**=जो इसका **पञ्चमः प्राणः**=पाँचवा प्राण है, **योनिः नाम**=वह योनि नामवाला है—उत्तम सन्तति को जन्म देनेवाला—उत्पत्ति का कारण **ताः इमाः आपः**=वे ये रेतःकण ही हैं। प्राणायाम द्वारा सुरक्षित रेतःकण ही सन्तान को जन्म देने का साधन बनते हैं। ३. **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः अस्य**=जो इसका **षष्ठः प्राणः**=षष्ठ प्राण है, वह **प्रियः नाम**=प्रिय नामवाला है—प्रीति को उत्पन्न करनेवाला। **ते इमे पशवः**=वे ये पशु ही हैं। 'पश्यन्ति इति' जो ज्ञान-प्राप्ति का साधन बनती है, अर्थात् ज्ञानेन्द्रियाँ ही यहाँ पशु कही गई हैं। प्राणशक्ति की वृद्धि में इनकी भी वृद्धि है। ये ज्ञान का वर्धन करती हुई प्रीति का कारण बनती हैं। ४. **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः**=जो इसका **सप्तमः प्राणः**=सातवाँ प्राण है, वह **अपरिमितः नाम**=अपरिमित नामवाला है। यह मनुष्य को बड़ी व्यापक वृत्तिवाला बनाता है। **ताः इमाः प्रजाः**=वे ही ये शक्तियों के प्रादुर्भाव हैं। प्राणायाम से अद्भुत शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है—इसी को यहाँ 'प्रजाः' (जनी प्रादुर्भावे) इस रूप में कहा गया है।

भावार्थ—प्राणसाधना से शक्तियों का जन्म होकर जीवन की पवित्रता उत्पन्न होती है। शरीर में सुरक्षित रेतःकण उत्तम सन्तति को जन्म देने का साधन बनाते हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ सशक्त

होकर ज्ञानसम्पादन करती हुई प्रीति उत्पन्न करती हैं और सब शक्तियों का प्रादुर्भाव होकर हम अपरिमित लोकों (ब्रह्मलोक) को प्राप्त करनेवाले बनते हैं।

१६. [षोडशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१, ३ साम्न्युष्णिक्; २,४,५ प्राजापत्योष्णिक्; ६ याजुषीत्रिष्टुप्; ७ आसुरीगायत्री; (१-७ तस्य व्रात्यस्येत्यस्योक्तम्)**॥

सात 'अपान' दोषापनयन साधन

तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य प्रथ॒मोऽपा॒नः सा पौर्ण॒मा॒सी॥ १॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य द्वि॒तीयो॑ ऽपा॒नः साष्टका॥ २॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य तृ॒तीयो॑ ऽपा॒नः सामा॑वा॒स्या॑॥ ३॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य च॒तुर्थो॑ ऽपा॒नः सा श्र॒द्धा॥ ४॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य पञ्च॒मो ऽपा॒नः सा दी॒क्षा॥ ५॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य ष॒ष्ठो ऽपा॒नः स य॒ज्ञः॥ ६॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य स॒प्त॒मो ऽपा॒नस्ता इ॒मा दक्षि॑णाः॥ ७॥

१. **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः अस्य**=जो इसका **प्रथमः अपानः**=प्रथम अपान है **सा पौर्णमासी**=वह पौर्णमासी है **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः अस्य**=जो इसका **द्वितीयः अपानः**=द्वितीय अपान है **सा अष्टका**=वह अष्टका है। **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः अस्य**=जो इसका **तृतीयः अपानाः**=तीसरा अपान है **सा अमावास्या**=वह अमावास्या है **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः अस्य**=जो इसका **चतुर्थः अपानः**=चौथा अपान है **सा श्रद्धा**=वह श्रद्धा है **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः अस्य**=जो इसका **पञ्चमः अपानः**=पञ्चम अपान है **सा दीक्षा**=वह दीक्षा है **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः अस्य**=जो इसका **षष्ठः अपानः**=छठा अपान है, **सः यज्ञः**=वह यज्ञ है और **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः अस्य**=जो इसका **सप्तमः अपानः**=सातवाँ अपान है **ताः इमा दक्षिणाः**=वे ये दानवृत्तियाँ हैं। २. व्रात्य ने अपने दोषों को दूर करने के लिए जिन साधनों को अपनाया, वे ही अपान हैं। पहला अपान पौर्णमासी है, अर्थात् व्रात्य संकल्प करता है कि जैसे पूर्णिमा का चाँद सब कलाओं से पूरिपूर्ण है, इसी प्रकार मैं भी अपने जीवन को १६ कलाओं से (प्राण, श्रद्धा, पंचभूत, इन्द्रियाँ, मन, अन्न, वीर्य, मन्त्र, कर्म, लोक व नाम) परिपूर्ण बनाऊँगा। जीवन को ऐसा बनाने के लिए दूसरा 'अपान' अष्टक साधन बनता है। अष्टका से अष्टांगयोगमार्ग अभिप्रेत है। इस योगमार्ग को (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि) अपनाने से मानवजीवन पूर्णता की ओर अग्रसर होता है। इस जीवन का तीसरा अपान है 'अमावास्या'। इसका अभिप्राय है 'सूर्य व चन्द्र' का एक राशि में होना। इस व्रात्य के जीवन में मस्तिष्क गगन में ज्ञानसूर्य का उदय होता है तो हृदय में भक्तिरस के चन्द्र का। एवं इसका जीवन प्रकाश व आनन्द से परिपूर्ण होता है। ४. इस अनुभव से इसके जीवन में 'श्रद्धा' का प्रवेश होता है। यह श्रद्धा उसके जीवन को पवित्र करती हुई उसके लिए 'कामायनी' बनती है। इस श्रद्धा के कारण ही यह 'दीक्षा' में प्रवेश करता है—कभी भी इसका जीवन 'अव्रती' नहीं होता। अल्पव्रतों का पालन करता हुआ यह महाव्रतों की ओर झुकता है। इसका जीवन 'यज्ञमय' बनता है। यज्ञों की पराकाष्ठा ही 'दक्षिणाएँ' व दानवृत्तियाँ होती हैं (यज् दाने) इनको अपनाता हुआ यह सब पापों को छिन्नकर लेता है

और पूर्ण पवित्र जीवनवाला बनकर प्रभु की प्रीति का पात्र होता है।

भावार्थ—हम इस सूक्त में प्रतिपादित 'पौर्णमासी, अष्टका, अमावास्या, श्रद्धा, दीक्षा, यज्ञ, दक्षिणा' रूप सात अपानों को अपनाते हुए पवित्र जीवनवाला बनें।

१७. [सप्तदशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—**१,५ प्राजापत्योष्णिक्; २, ७ आसुर्यनुष्टुप्; ३ याजुषीत्रिष्टुप्; ४ साम्न्युष्णिक्; ६ याजुषीत्रिष्टुप्; (१-७ तस्य व्रात्यस्येत्यस्योक्तम्)**॥

सात व्यान

तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य प्रथ॒मो व्या॒नः सेयं भूमिः॥ १॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य द्वि॒तीयो॑ व्या॒नस्तद॒न्तरि॑क्षम्॥ २॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य तृ॒तीयो॑ व्या॒नः सा द्यौः॥ ३॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य च॒तुर्थो॑ व्या॒नस्तानि॒ नक्ष॑त्राणि॥ ४॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य प॒ञ्च॒मो व्या॒नस्त ऋ॒तवः॥ ५॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य ष॒ष्ठो व्या॒नस्त आ॑र्त॒वाः॥ ६॥
तस्य॒ व्रात्य॑स्य। यो ऽस्य स॒प्त॒मो व्या॒नः स संव॑त्सरः॥ ७॥

१. **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः**=जो **अस्य**=इसका **प्रथमः व्यानः**=पहला व्यान है, **सा इयं भूमिः**=वह यह भूमि है। **तस्य व्रात्यस्य अस्य**=उस व्रात्य का **यः अस्य**=जो इसका **द्वितीयः व्यानः**=दूसरा व्यान है **तत् अन्तरिक्षम्**=वह अन्तरिक्ष है। **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः अस्य**=जो इसका **तृतीयः व्यानः**=तीसरा व्यान है, **सा द्यौः**=वह द्युलोक है। **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः**=जो **अस्य**=इसका **चतुर्थः व्यानः**=चौथा व्यान है **तानि**=वे **नक्षत्राणि**=नक्षत्र हैं। **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः**=जो **अस्य**=इसका **पंचमः व्यानः**=पाँचवाँ व्यान है **ते ऋतवः**=वे ऋतुएँ हैं। **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः**=जो **अस्य**=इसका **षष्ठः व्यानः**=छठा व्यान है **ते आर्तवाः**=वे आर्तव हैं—उस-उस ऋतु में होनेवाले फल, अन्न आदि हैं। **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य का **यः**=जो **अस्य**=इसका **सप्तमः व्यानः**=सातवाँ व्यान है, **सः संवत्सरः**=वह संवत्सर है। २. 'व्यान' का अर्थ आचार्य (स्वा० दयानन्द) यजुः० १५.६५ पर 'विविधविद्या व्याप्ति' करते हैं। १.२० पर 'विविधमन्यते व्याप्यते येन स सर्वेषां शुभगुणानां कर्मविद्योगानाञ्च व्याप्तिहेतुः' इस रूप में लिखते हैं। एवं स्पष्ट है कि व्यान का भाव—सब ज्ञानों की प्राप्ति—जीवन के निर्माण के लिए, जीवन को शुभगुणों व विद्याओं से व्याप्त करने के साधनभूत प्राणवायु पर आधिपत्य। इस व्रात्य के जीवन में प्रथम व्यान 'भूमि' है, द्वितीय 'अन्तरिक्ष', तृतीय 'द्यौः' और चतुर्थ 'नक्षत्र'। यह व्रात्य इन सबके ज्ञान को सम्यक्तया प्राप्त करके क्रमशः अपने 'शरीर, मन व मस्तिष्क' (भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौः) को उत्तम बनाता हुआ व विज्ञान के नक्षत्रों को अपने मस्तिष्क-गगन में उदित करता है। इनके उदय से ही वह जीवन के लिए आवश्यक सब सामग्री को जुटानेवाला होता है। ३. पाँचवाँ व्यान 'ऋतुएँ' हैं, छठा 'आर्तव' ऋतुओं में होनेवाले अन्न व फल तथा सातवाँ 'संवत्सर'। यह व्रात्य अपनी ऋतुचर्या को ठीक रखता है, उस-उस ऋतु में उन 'आर्तव' पदार्थों का ठीक प्रयोग करता है, सम्पूर्ण वर्ष बड़ी नियमित गतिवाला होता है। इसी दृष्टिकोण से यह कालविद्या को खूब समझने का प्रयत्न करता है।

भावार्थ—व्रात्य 'भूमि, अन्तरिक्ष, द्युलोक, नक्षत्र, ऋतु, आर्तव व संवत्सर' इन सबका ज्ञान प्राप्त करके इनका ठीक प्रयोग करता हुआ अपने जीवन को सुन्दरतम बनाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—८ **प्रतिष्ठाऽऽर्चीपङ्क्तिः**; ९ **द्विपदासाम्नीत्रिष्टुप्**; १० **साम्न्यनुष्टुप्** (८-१० **तस्य व्रात्यस्येत्यस्योक्तम्**)॥

अमृतत्वम्-आहुतिः

तस्य व्रात्यस्य। समानमर्थं परि यन्ति देवाः संवत्सरं
वा एतदृतवोऽनुपरियन्ति व्रात्यं च॥ ८॥
तस्य व्रात्यस्य। यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां ∫ चैव तत्पौर्णमासीं च॥ ९॥
तस्य व्रात्यस्य। एकं तदेषाममृतत्वमित्याहुतिरेव॥ १०॥

१. **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य के **समानं अर्थम्**=(सम् आनयति) पृथक् प्राणित करने के प्रयोजन को **देवाः परियन्ति**=सब देव—प्राकृतिक शक्तियाँ सर्वतः इसप्रकार प्राप्त होती हैं, जैसे **ऋतुवः**=ऋतुएँ **एतत् संवत्सरम्**=इस संवत्सर को **अनुपरियन्ति**=अनुक्रमेण प्राप्त होती हैं। ये **च**=और ये सब धातुएँ **व्रात्यम्**=व्रात्य को भी अनुकूलता से प्राप्त होती हैं। ऋतुओं की अनुकूलता से यह व्रात्य स्वस्थ बना रहता है। २. ये सब प्राकृतिक शक्तियाँ (देव) **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य के **यत् आदित्यं अभिसंविशन्ति**=ज्ञानसूर्य में अनुकूलता से प्रविष्ट होती हैं, **अमावास्यां च एव**=और निश्चय से उस व्रात्य की अमावास्या में—ज्ञानसूर्य व भक्तिरसरूप चन्द्र के समन्वय में प्रवेश करती हैं, **च तत्**=और तब **पौर्णमासीम्**=पौर्णमासी में—जीवन को सोलह कलापूर्ण बनाने में, प्रवेश करती हैं, **तत्**=वे 'सब प्राकृतिक शक्तियाँ **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य को ज्ञानसूर्ययुक्त जीवनवाला बनाती है—इसके जीवन में ज्ञानसूर्य व भक्तिचन्द्र का समन्वय करना तथा इसे षोडश कला सम्पन्न जीवनवाला करना' **एषाम्**=इन देवों का **एकम्**=अद्वितीय कर्म है। यही **अमृतत्वम्**=अमृतत्व है। यही **आहुतिः एव**=परब्रह्म में व्रात्य का आहुत हो जाना है—पूर्णरूप से अर्पित हो जाना।

भावार्थ—हम व्रात्य बनते हैं तो सब देव (प्राकृतिक शक्तियाँ) हमारे अनुकूल होते हुए हमें ज्ञानसूर्य से दीप्त जीवनवाला बनाते हैं। ये हमारे जीवन में ज्ञान व भक्ति के सूर्य और चन्द्र का सहवास कराते हैं तथा हमारे जीवन को सोलह कलापूर्ण करते हैं। यही अमृतत्व है, यही प्रभु के प्रति अर्पण है।

१८. [अष्टादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, व्रात्यः**॥ छन्दः—१ **दैवीपङ्क्तिः**; २, ३ **आर्चीबृहती**; ४ **आर्च्यनुष्टुप्**; ५ **साम्न्युष्णिक्**॥

व्रात्याय नमः

तस्य व्रात्यस्य॥ १॥
यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः॥ २॥
यो ∫स्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निर्यो ∫स्य सव्यः कर्णो ऽयं स पवमानः॥ ३॥
अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः॥ ४॥
अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय॥ ५॥

१. **तस्य व्रात्यस्य**=उस व्रात्य की—अमृतत्व को प्राप्त करनेवाले तथा प्रभु के प्रति अपना

अर्पण करनेवाले व्रात्य की **यत् अस्य दक्षिणम् अक्षि**=जो इसकी दाहिनी आँख है **असौ स आदित्यः**=वही आदित्य है। **यत् अस्य सव्य अक्षि**=जो इसकी बायीं आँख है **असौ स चन्द्रमाः**=वही चन्द्रमा है। दाहिनी आँख ज्ञान का आदान करनेवाली है तो बायीं आँख सबको चन्द्र=शीतल ज्योत्स्ना की भाँति प्रेम से देखनेवाली है। **यः**=जो **अस्य दक्षिणः कर्णः**=इसका दाहिना कान है **अयं सः**=वह ये **अग्निः**=अग्नि है, **यः अस्य सव्यः कर्णः**=जो इसका बायाँ कान है, **अयं सः**=वह यह **पवमानः**=पवमान है। दाहिने कान से यह अग्रगति (उन्नति) की बातों को सुनता है तो बाएँ कान से उन्हीं ज्ञानचर्चाओं को सुनता है जो उसे पवित्र बनानेवाली हैं। २. इसके **अहोरात्रे नासिके**=नासिका-छिद्र अहोरात्र हैं। दाहिना छिद्र अहन् है तो बायाँ रात्रि। दाहिना सूर्यस्वरवाला (दिन) है तो बायाँ चन्द्रस्वरवाला (रात) है। दाहिना प्राणशक्ति का संचार करता है तथा बायाँ अपान के द्वारा दोषों को दूर करता है। इसी दृष्टि से यह दिन-रात प्राणसाधना का ध्यान करता है। इस व्रात्य के **दितिः च अदितिः च शीर्षकपाले**=दिति और अदिति सिर के दो कपाल हैं (Cerebrum, cerebelium) प्रकृति विद्या ही दिति है, आत्मविद्या अदिति। यह विविध प्रकार का ज्ञान प्राप्त करता है। **संवत्सरं शिरः**=इसका संवत्सर ही सिर है। सम्पूर्ण वर्ष उसी ज्ञान को प्राप्त करने का यह प्रयत्न करता है, जोकि उसके निवास को उत्तम बनाने के लिए आवश्यक है। ३. इस प्रकार अपने जीवन को बनाकर वह **व्रात्यः**=व्रतमय जीवनवाला पुरुष **अह्नः**=दिनभर के कार्यों को करने के द्वारा दिन की समाप्ति पर **प्रत्यङ्**=अपने अन्दर आत्मतत्त्व को देखने का प्रयत्न करता है और **रात्र्या**=सम्पूर्ण रात्रि के द्वारा अपने जीवन में शक्ति का संचार करके **प्राङ्**=(प्र अञ्च) अपने कर्त्तव्य-कर्मों में आगे बढ़ता है। **व्रात्याय नमः**=इस व्रात्य के लिए हम नमस्कार करते हैं।

भावार्थ—व्रतमय जीवनवाले पुरुष की दाहिनी आँख ज्ञान का आदान करती है तो बायीं आँख सबको प्रेम से देखती है। इसका दाहिना कान अग्रगति की बातों को सुनता है तो बायाँ कान पवित्रता की। इसके नासिका-छिद्र दिन-रात दीर्घश्वास लेनेवाले होते हैं। यह प्रकृतिविद्या व आत्मविद्या को प्राप्त करता है। कालज्ञ बनता है—सब कार्यों को ठीक स्थान व ठीक समय पर करता है। दिनभर के कार्य के पश्चात् आत्मचिन्तन करता है और रात्रि विश्राम के बाद कर्त्तव्यों में प्रवृत्त होता है। यह व्रात्य नमस्करणीय है।

॥ इति पञ्चदशं काण्डम्॥